स्वस्ति वाचन

अक्षुण्ण

अचंचल विश्वास के कारण
प्रचार में लाये गये योग
का आचरण कर मास्टर सी.वी.वी
के उपदेशों को जो एक मन
से मनसा वाचा, कर्मणा
पालन कर रहे है, वे भी धन्य है ।
मास्टर सी.वी.वी. के द्वारा दर्शाया
गया मार्ग एक कल्याणाकारी
मार्ग है, इस मार्ग पर चलने
वाले सुख, संतोष, संपूर्ण
स्वास्थ्य के भागीदर, हकदार
बन सकते हैं ।
हे मास्टर सी.वी.वी.
हम सब पर दया करो ।

* * *

सत्य ज्ञान और आनंद का दिव्य सुगंध
चारों ओर फैल रहा है । यह चित्ताकर्षक
ओर मनमोहक सुगंध है ।

* * *

प्रज्ञा प्रभाकरम् मास्टर सी.वी.वी. के प्रति और
उनके योग के प्रति श्री वी.पी. शास्त्री
जी की श्रद्धा भक्ति और विश्वास को प्रकट
करने वाला शपथ पत्र (Affidavit) है ।

* * *

यह पाठकों में भी विश्वास को पैदा
करता है । यह एक पथ का प्रदर्शन
करता है । मास्टर सी.वी.वी. के प्रति श्री
वेटूरि प्रभाकर शास्त्री के मन में
अचल सुदृढ, अचंचल और पूर्ण
विश्वास था, जब आपके मन में
मास्टर सी.वी.वी. के प्रति अटूट विश्वास
है तो उनकी कृपा तुम्हारी रक्षा
सदैव करती रहेगी, संपूर्ण स्वास्थ्य
आनंदमय अस्तित्व को प्रदान करेगी
कृपया इस पर ध्यान दीजिये ''श्री वेटूरी
प्रभाकर शास्त्री ने कहा है ।।
इसे घी बनाने का काम तुम्हारा ही है
एक दिन के लिये भी चूकना नहीं चाहिये ।

* * *

सृजनात्मक संसार का विकास तिस पर योग
का विकास कब होगा कोई नहीं जान सकता ।
भविष्य की उन्नति पहले से देखी नहीं
जा सकती है, विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना
और भविष्य के बारे में ठीक-ठीक बताना,
उन्नति कर योग सिद्धि पाना आदि असंभव
है, मुझे पूर्ण रूप से नहीं अंश रूप
में ही वह दिव्य ज्ञान प्राप्त है, यह सत्य है ।।

* * *

''किस कारण से तुम शिष्य बने हो ? उस कारण
का अनुसरण करो, नाडी ग्रंथों का अध्ययन
करने के बाद तुम मेरा शिष्य नहीं बनें हों
सी.वी.वी. के शिष्य बनने के बाद ही
तुम को नाडी ग्रंथों के बारे में जानकारी हो गयी है ।

* * *

अंतरात्मा की वाणी को सुन नहीं पाओगे
बाह्य स्त्रोतों पर
निर्भरता को तुम्हें छोड़ देना चाहिये । तुम्हें
अंतरवाणि को सुनने की आदत डाल लेनी है ।
उसके अनुसार ही तुम्हे चलना हैं । व्यक्तिगत
अनुभवों को प्राप्त करना ही उसका प्रमाण चिह्न हैं ।।

* * *

इस तरह वह मनसा वाचा कर्मणा शुद्ध और
पूर्ण बन जाता है, इस अवस्था तक पहुँचने
के बाद ही उसका ज्ञान पूर्ण और दोष रहित बन
जाता है, यह बात इस विश्व के रहस्यों को
और सृष्टि के रहस्यों को जानने के मामलों पर
अधिक लागू होती है, ज्ञान को प्राप्त करने के
प्रयत्न इस दिशा में किये जा रहे है ।।

* * *

जैसे-जैसे हम दिव्य के पास चले जायेंगे
वैसे वैसे हम लोगों का ज्ञान पूर्ण एवं
यथार्थ बनता जायेगा ।
जैसे जैसे मनुष्य प्रयत्न करता जायेगा
वैसे वैसे वह अंतरात्मा की वाणी को
स्पष्ट सुन पायेगा ।।

* * *

अपने आप से, बंधु बांधवों से प्रेम को शुरू होना
चाहिए और विश्वभर में फैल जाना चाहिये ।
जब तक तुम्हारा प्रेम फैल नहीं जाता तब तक तुम
तुम उस परम तत्व को जान नही पओगे ।
सिर्फ ऐसे व्यक्ति ही पूर्णता को प्राप्त करता है
और दूसरों को मार्ग पर ला सकता है । परमात्मा
एक है, अखण्ड और सर्व व्यापी है । उस पूर्णता
को जानने के लिये तुमको विस्तृत हो जाना

पड़ेगा, दूसरों के प्रति जो प्रेम भावना तुझमें है,
उसको भी फैलाना पडेगा, जब तक इस
संसार के झंझटों से झूझते ही रहोगे तब तक
इस संसार के जाल में फँसे ही रहोगे वह
जिस अंतर और पृथकता को देखते हो
उसी प्रकार अंदर की एकता को देखो
इस योगभ्यास का यही लक्ष्य और गम्य हैं ।
हमारी संपूर्णता भविष्य में निक्षिप्त है । इस
संपूर्णता को पाने के मार्ग को योग सुगम कर देगा ।।

* * *

तुम्हारी अंतरात्मा की वाणी तुम्हारा मार्गदर्शन करेगी
अगर तुम भक्ति और श्रद्धा से इसका पालना करो
तो । तुम खुद धीरे-धीरे जान जाओगे कि तुमको
मार्गदर्शन कहाँ से मिल रहा हैं ।

* * *

सुबह किऐ जाने वाली प्रार्थना का असर शाम
तक रहेगा । जिस प्रकार की उन्नवी की आवश्यकता
हैं, उस प्रकार की उन्नति अवश्य होगी ।

* * *

जब तक गाडी रस्ते पर चल रही है तब तक उसकी
मरम्मत हो सकती है । जब तक वह चल रही है तब तक
उसको चलने देना चाहिए । उसके भागों को अलग
नहीं करना चाहिए । जब तक कोई शिकायत नही है
तब तक उसकी मरम्मत भी नहीं होनी चाहिए ।
अगर ऐसा किया जाय तो चालक का जीवन
अस्तव्यस्त हो जायगा । त्यजना मेरा मार्ग नहीं हैं ।
सामान्य जीवन के विघ्नों से हमे बचना चाहिए
गृहस्थाश्रम को छोड़ना नहीं चाहिए । सन्यासी
बनने की कोई आवश्यकता नहीं ।

* * *

अंतरात्मा की वाणी का शरण लेकर इसका
अभ्यास किया जा सकता है । जब साधक प्रतिष्ठा
और विश्वास के साथ उसकी ओर बढ़ता है तब उस
उन्नति के आधार पर उसको मार्गदर्शन भी मिलता है ।
जिस हद तक अवश्यक है । जिस हद तक वह चाहता है
उस हद तक न सही पर उसको लाभ अवश्य मिलता है ।

* * *

मास्टर जी ने कहा भक्ति ओर श्रद्धा के साथ योगाभ्यास करने
पर ही हम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है । पूर्णता
पाने के लिए समय लग सकता है ।
साधना के द्वारा ही हमको शुद्धि मिल सकती है । शुद्धि
द्वारा सकता उद्धार हो । इस उद्धार के कारण ही
सिद्धि मिल सकती है । इन सबको प्राप्त करने के लिए अपने
आप को पूर्ण से परमात्मा के चरणों पर अर्पण करना
पड़ता है ।

* * *

साधना के लिए भौतिक शरीर अति आवश्यक है । भौतिक
शरीर के बिना अनुभवों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है ।
अपने इस जीवन में जितने अनुभवों को प्रापत करेंगे वे
सब मृत्यु के उपरांत उस शरीर को छोड़ देते हैं ।

* * *

मास्टर सी.वी.वी. नाम से प्रसिद्ध श्री कंचुपटि वेंकटराव
ने श्री गुरुप्रसादम् को योग की दीक्षा दी । उनकी
चिकित्सा के द्वारा उन्होंने खोये हुए स्वास्थ्य को पाया ।
उस दिन से सब जान गये कि योग ही सबके उद्धार का
एक मात्र मार्ग है ।
वेटूरि प्रभाकर ने अपने गुरु जी सी.वी.वी. की महानता
की प्रशंसा करते हुए कुछ कविताएँ की थी । श्री प्रभाकर
शास्त्री की आतुरता, उत्सुकता और साहित्य प्रतिभा के
बारे में जानकर मास्टर सी.वी.वी. ने उनको झिडकी देते हुए

कहा था जब तक तुम पूर्ण रूप से जान नहीं पाओगे
तब तक मेरी प्रशंसा में कविताएँ तुमको लिखना नहीं चाहिए ।

* * *

अमृतत्व सिद्धि के लिए किये जानेवाले इस योग की
महिमा अवर्णनीय और अनिर्वचनीय है । मास्टरजी
की महानता को बताने वाले इस ग्रंथ को पढ़कर बहुत
सारे लोग इस योग से परिचिय हो जायेंगे ।
शास्त्री जी का साठवाँ जन्म दिन तिरपुति में सन् 1948 को
मनाया गया था । उस संदर्भ में आयोजित सभा में
अपने मनोगत भावों को शास्त्री जी ने इन शब्दों में
प्रकट किया था ।
आज मैं अपने साठवें वर्ष में पदार्पण कर रहा हूँ ।
मैं मास्टर जी से प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपने
जीवन लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो जाऊँ ।
शास्त्री जी को लगा कि उनकी प्रार्थना मास्टर जी तक
पहुँच गई और मास्टर जी उससे कह रहे है :
''कल तक तुम प्रभाकर थे । अब से तुम 'प्रज्ञा प्रभाकर'
हो । उस दिन से प्रज्ञा प्रभाकर को लिखने का श्रीगणेश
शास्त्री जी ने किया ।
पर श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री ने उक्त सिद्धांतों का
आचरण अपने जीवन काल में किया है । उक्त
सिद्धांतों को आचरण में रखने का समय आसन्न
हो गया है । व्यक्ति मोक्ष की अवस्था से ही काल का
विकास हुआ है। इस दशा से ही समाज का
निस्तार होता है ।

दिव्य ज्योतिर्नमोस्तुते

सकल मानव दिव्य ज्योती ।
करुणारस सिधुः प्रेम ज्योती
दुःख निवारिणि अमर ज्योति

कुंडलिनी प्रेरक सत्य युग ज्योती
भ्रुक्तक्र रहित तारक राज योग
प्रदीपिणि नमस्तुते नमस्तुतें ।

* * *

अनुवाद है
साई प्रसाद जी का
अतुलनीय ।
प्रबल यदार्थता युक्त
सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत करने वाले
डॉ.ए.बी.साई प्रसाद को मैं हार्दिक
बधाईयाँ देता हूँ ।

- वी.विनय भूषण राव
नाविक, दार्शनिक, पत्राकार एवं प्रवक्ता
विजयवाडा, आंध्र प्रदेश.

Dr.P.Adeswara Rao M.A., Ph.D.,
Retd. Prof. of Hindi Department
Andhra Viswakalparishath
405, Balaji Towers, Kirlampudi Layout
VISAKHAPATNAM - 530 017.

Pragna Prabhakaram

I have gone through the work of Pragnath Veturi Prabhakar Shastri entitled, 'PRAGNA PRABHAKAR' translated into Hindi by Dr. A.B. Saiprasad, retired Hindi Professor. The author's aim in writing this auto-biography is to give an account of his transformation in the course of his long journey. He got inspiration from the auto-biography of Mahatma Gandhi, the father of the Nation. The author says that he has no objection if anybody thinks that this is the history of Prabhakar but there is vast difference between this Prabhakar and enlightened Prabhakar symbolising both Truth and beauty.

This auto-biography has been divided into thirty chapters and presented admirably. The author took his birth on 7th February 1888 in Pedakallepalle Village situated on the bank of river Krishna in a learned traditional Brahmin family. The names of his parents are Seshamma and Sundar Sastri. His mother had given birth to four sons of whom he has the second child. The author says that all the brothers lived together happily. The author's first teacher was his father who taught him Sanskrit and futurology. The author's grandfather blessed his son that he would live for about 83 years like himself. Then the author goes on narrating many incidents of his life, how he mastered Sanskrit and Telugu from the learned teachers of his village. He narrates in great detail how the Hindu and Buddhist festivals were used to be celebrated in his village in a befitting manner. He also mentions that his father was also a doctor treating all those poor people who were ill with care and compassion. It is interesting to note how the author criticised the practices of some Brahmin Purohits who loot the people on the false pretext of serving them at the funerals and such social activities. Here it should be noted how the author critically observed the traditional manners of his society. We can find a lot of conflict in his mind as regards to what should be adopted and what should be discarded.

In another chapter he described how he along with his friends learnt about Telugu literature from renowned Chellapilla Venkata Sastry in Machilipatnam, when he was only sixteen years old.

The author explains how he read the writings of the great Veereshalingam Pantulu, 19th Century's social reformer and multifaceted literary genius. He also says how he met Konda Venkatappayya Pantulu, a great patriot and other such dignitaries when he was studying in Bandar. In the eighth chapter the author narrates how he was appointed as a Telugu Pandit in the Wesley Mission School in Madras where he spent two years. In this period he used to read manuscripts in the Oriental Manuscript Library where he used to meet Vepa Ramesham, a profound scholar in Mathematics, History and Cosmology. Along with him the author used to study about the planets and star-clusters; In 1950A.D. they found a comet named, Halleys in the horizon with the help of a Binocular and a Telescope at dawn.

In the eleventh chapter the author narrates how he married a girl aged ten years at the age of twenty two. In the twelth chapter he gives an account of an accident while travelling in a bullock cart, and how his hand was broken, and how a compounder of Avanigadda hospital undertook the treatment of his hand without administering chloroform in the absence of the resident doctor. Everybody around the author took pity on him and thought that he was unlucky with his marriage as it proved to be a bad omen. He says that he did not find any fault with his innocent wife, thinking positively that marriages are made in heaven. The author continues saying that eight years of married life he began to experience, some happy days.

In the fourteenth chapter the author gives an account of his literary life at Mylapore, Madras. In the manuscripts library he used to go through manuscripts with a critical eye. In his book. 'Kavula Charitra' what Veereshalingam Pantulu wrote about Pavuluri Mallanna appeared objectionable to him. Through research he tried to establish that Veereshalingam was wrong and published papers in different journals that this Mallanna was the grandson of that Mallanna who was a contemporary of Adikavi Nannaya. The author says that Chilukuri Verabhadra Rao and some others opposed him vehimently since they

could not digest his criticism about the established Veereshalingam. Here, the author says that he could understand their ire. The author narrates many incidents of that sort.

In the sixteenth chapter the author writes about his two desires, visit to Lord Venkateswara at Tirupathi and spending happy married life. The author further gives an account of his illness and how he was cured.

In 24th and 25th chapters the author describes the divine message he got from his guru at the Ashram. Guru was collecting some important things from his wife. The author felt that the was progressing in the path of divine light. He was told that the yogic power is dynamic power or can be called as 'Pragna', which works like electricity and should be used moderately, lest it should cause irreparable harm. His guru asked him to continue his meditation concentrating on his inner soul with discretion and responsibility. The author continues his yoga practice with his other friends in Madras.

In the 27th chapter the author wanted to know the 'Master' and the people there gave an account of him, how Master's ancestors migrated to Tamilnadu at the time of Srikrishnadevaraya's time (Approximately 16th century). They settled down at Kumbhakonam on the bank of the river Kaveri and the name of their settlement began to be called 'Agraharam'. The surname of the 'MASTER' is Kanchupati and his name is 'Venkataswamy'. When the author enquired about his Sanskrit Knowledge, people, there, told him that he did not know Sanskrit and the master has learnt about all scripts through their English translation in his childhood. The author's doubts were cleared by the 'MASTER' when he said the following Sanskrit Sloka.......

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्
लोचनाभ्याम् विहीनस्य दर्पणः किंकरिष्यति ।

Meaning: who is not an atmagyani the pure scripture would be of no help to him. By this it can be noted that 'Atmagyanis can create Sashtras'.

Here I am reminded of the great Hindi poet Tulasidas who says in his Ramacharit Manas as follows :

आत्मज्ञान अत्यंत निपुण भव पार न पावे कोई
निशिगृह मध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्त न होई ।।

Meaning: 'Any person, of expertise in Atmagnana could not cross this ocean of the world as in the same way how the darkness in the house could not perish simply uttering the name of a lamp.'

In the 28th chapter the author narrates some of his experiences at Kumbhakonam and also mentions about depression caused to him. Then he feels that only his guru (Master) can remove his depression and began, to feel his Guru's spiritual presence in him.

The author concludes his autobiography that great people in the world took their birth with a specific purpose, but not with the blessings of Gods and Goddesses. Their birth is for specific goal. Their birth takes place once again to complete their unfinished work. The births of great people like Goutham Buddha, Mahavir Jain and Sankaracharya prove this theory.

On the whole this Biography looks like a garland of flowers knitted together by life's thread with different incidents, divine experiences thoughts, facts and realities with a historical, cultural, traditional and scientific background. The reader would find himself in divine world of wonders. He could enjoy the affection and compassion of Yogic Guru's blessings to the family members of their disciples. Thus the life of an author moves ahead in the endless time.

In this connection I would like to quote Dr. Samuel Johnson's observation 'A good book is in the life blood of a Master spirit' which aptly suits to this autobiography. The author has left his footprints on the sands of time.

The writer concludes that if anybody has complete faith in the Master his grace would save him and bestow on him healthy and happy life.

Dr. Saiprasad's Hindi translation of this work is highly commendable. Actually it is a recreation of the Telugu text. The reader would feel that he is reading an original work, but not a translated one.

Hyderabad **(P. Adeswara Rao)**
16.9.2014

अनुवादक की ओर से ....

सत्यता (Honesty) या ईमानदारी, आत्मकथा अथवा जीवनी की आत्मा होती है । इस कसौटी पर खरी उतरने वाली आत्मकथा श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी कृत 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' है । इस विरल (Rare) सत्य को उजागर करना ही इस हिंदी अनुवाद का एकमात्र उद्देश्य है ।

अनुवादों के लिए प्रेरणा हमें ऋग्वेद के ''आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः'' (1-89-1) से और शांति मंत्र के ''ऊँ भद्रं कर्णे भि श्रृणुयाम देवाः'' से मिलती है । तेलुगु साहित्य की बहु चर्चित आत्मकथा - 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' को हिंदी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना हमारे इस अनुवाद का लक्ष्य है । इस अनुवाद के द्वारा हम भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ.सर्वेपल्लि राधाकृष्णन के इस बात को प्रमाणित करना चाहते हैं कि अनेकानेक भाषाओं में प्रस्तुत किया गया भारतीय साहित्य एक है । आशा एवं विश्वास है कि हिंदी जगत् इसका सादर स्वागत करेगा ।

मेरे इस अनुवाद के लिए प्रमुख रूप से प्रेरणा देनेवाले मेरे परम हितैषी एवं अग्रज हैदराबाद के श्री कोडूरि पुल्ला रेड्डी जी हैं । उनकी सिफारिश के कारण ही इस महत्वपूर्ण आत्मकथा 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' का हिंदी अनुवाद करने का सौभाग्य मुझ को मिला है । मैं उनका आजीवन ऋणी रहूँगा । इस अनुवाद का पूरा श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिए ।

श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी के सुपुत्र डॉ.वेटूरि आनंद मूर्ति जी के प्रति हृदय से मैं अपना आभार प्रकट करना चाहता हूँ । कई सालों के पहले मद्रास विश्वविद्यालय के तेलुगु विभाग में आयोजित एक साहित्य सभा में इनके प्रभावशाली भाषण को सुनने का सुअवसर मुझको मिला था । उनकी भाषाण कला एवं विषय

प्रस्तुतीकरण शैली से मैं बहुत प्रभावित हुआ था । इसके बाद पारसाल मित्रवर श्री कोडूरि पुल्ला रेड्डी जी के कारण बेंगलूर में ही डॉ.वेटूरि आनंद मूर्ति जी से उनके घर पर मिलने का सौभाग्य मिला । उनके अनुरोध पर मैंने श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी के एक रेडियो भाषण का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया था । वे मेरे अनुवाद से लगता है खुश थे । इसलिए अपने पिताजी द्वारा कृत तेलुगु 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' को हिंदी में अनुवाद करने का भार उन्होंने मुझ को सौंपा । मैंने स्वप्न में भी सोचा नहीं था कि श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री कृत 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' का हिंदी अनुवाद करने का सुनहरा अवसर मुझ को मिलेगा । श्री वेटूरि आनंद मूर्ति जी ने 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' का अंग्रेजी अनुवाद खुद किया है ।

मैं अपने एक गणनीय मित्र श्री वै.यन.यस.चौधरी का स्मरण किये बिना नहीं रह सकता । वे मृदु भाषी हैं जो बोलने से ज्यादा सुनने में ज्यादा शौक रखते हैं । 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' के प्रकाशन कार्य को कुशलता के साथ संभालने में वे सफल हुए हैं । मास्टर सी.वी.वी. की कृपा भगवान करे उनपर बनी रहें ।

हिंदी अनुवाद को पूर्ण रूप से पढ़कर कुछ निर्माणात्मक सुझावों को देकर अपनी बहुमूल्य राय अंग्रेजी में मेरे आदरणीय गुरु भाई डॉ.पी.आदेश्वर रावने (भूतपूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखपट्टनम्, आंध्र प्रदेश) दी है । मैं उनको अपने सादर प्रणामों को अर्पित करता हूँ ।

चेन्नै के डॉ.बालशौरी रेड्डी जी मेरे परम हित चिंतक हैं । व्यस्त रहने के बावजूद भी मेरे लिए समय निकालकर मेरे अनुवाद को ध्यान से पढ़कर अपनी राय हिंदी में उन्होंने दी है । मैं उनका आभारी हूँ ।

"Sea Dog" श्री वी.विनय भूषण राव विजयवाडा के एक अति विशिष्ट भागरिक, दार्शनिक, पत्रकार एवं प्रवक्ता हैं । मैं इनको खुद नहीं जानता । फिर भी दरिया दिल वाले होने के कारण एक बड़े भाई की तरह मेरा पीठ ठोंकते हुए मेरे हिन्दी अनुवाद को सराहा है । मैं इनका ऋण चुका नहीं पाऊँगा ।

डी.टी.पी के कार्य को मेरे पुत्रसम श्री सत्यप्रकाश ने कुशलतापूर्वक संभाला है । भगवान उनका भला करें ।

अंत में मैं परमदयालु परम पिता भगवान को अपने श्रद्धापूर्ण प्रणाम अर्पित करता हूँ । उनकी अपार कृपा के कारण ही चंद अक्षरों को पढ़कर उनको कुछ हद तक हिंदी तेलुगु और अंग्रेजी में तमिल, कन्नड, मराठी से अनुवाद कर पा रहा हूँ ।

ओम् तत् सत् ओम् तत् सत् ः ओम् तत् सत्

आश्वयुज शुक्ल प्रथमा **- डॉ.ए.बी.साईप्रसाद**

25.09.2014

प्रकाशक की ओर से ......

मास्टर सी.वी.वी. नमस्कार

आधुनिक भारतीय प्रतिभा विकास के इतिहास में बीसवीं सदी को संधिकाल मान सकते हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के शुभ परिणामों के प्रभाव को हर एक क्षेत्र में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । सबको समान रूप से, हर एक क्षेत्र में, लाभ पहुँचाने का बीडा लोकतंत्रात्मक भारतीय सरकार ने उठाया । प्रेम, सत्य और धर्म को प्रधानता देते हुए देश प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है । राष्ट्र पिता श्री महात्मा गांधीजी को भारत सरकार ने पथ प्रदर्शक के रूप में स्वीकारा है । अनेकानेक महापुरुषों एवं मनीषियों के त्याग और सेवा भाव के कारण पूरे विश्व में भारतीय प्रतिष्ठा दिन-ब-दिन बढ़ रही है । अपनी स्वतंत्रता पिपासा के कारण हम राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों के साथ-साथ आध्यात्मिक क्षेत्र को भी सुसंपन्न कर रहे हैं ।

स्वतंत्रता के शुभ परिणामों को हम साहित्य के क्षेत्र में सुस्पष्ट देख सकते हैं । साहित्य के अंगों में जीवनियों और आत्मकथाओं से संबंधित रचनाओं का स्थान काफ़ी ऊँचा है । महापुरुषों के आदर्श जीवन और उनके अनमोल अनुभवों को बांटने के साथ-साथ जीवनियाँ और आत्म कथाएँ आम आदमी को भी उत्तेजित कर सही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरणा दे रही है ।

तेलुगु में अब तक कई जीवनियाँ और आत्मकथाएँ निकल चुकी हैं । इनमें स्वर्गीय वेटूरि प्रभाकर शास्त्री कृत 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' आत्मकथा का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है । यह अपने आप में एक अनोखी एवं प्रेरणादायक आत्मकथा है ।

यह मात्र एक आम आदमी की आत्मकथा नहीं है । परंतु एक बहु परिणत व्यक्ति के विकास की कहानी है । इनका जन्म एक आशयसिद्धि के लिए हुआ था । ''प्रज्ञा प्रभाकरम्'' उस आशय की आत्मकथा है । भविष्य में रूप धारण करने वाले एक लौकिक आध्यात्मिक समागम योग के लिए एक अच्छी भूमिका के रूप में अवतरित होना ही इसकी प्रचुरता का प्रधान कारण है । प्रज्ञा प्रभाकरम् के आरंभ में गुरूदेव श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री ने लिखा है कि इस आत्मकथा के लिए उनको प्रेरणा गांधीजी की आत्मकथा 'My Experiments With Truth' से मिली है । पर वास्तव में प्रज्ञा प्रभाकरम् की रचना के लिए अंदरूनी प्रेरणा स्रोत नूतन सत्य योग के प्रवक्ता परमगुरू मास्टर सी.वी.वी. ही है । इसमें संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । मास्टर सी.वी.वी. के आदेशानुसार ही 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' की रचना हुई है । मास्टर योग साधना के मार्ग में प्रवेश करने वाले साधकों के लिए 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' एक अवश्य पठनीय ग्रंथ बन गया है । सभी साधक अध्ययन कर अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव कर रहे हैं । मास्टर योग मार्ग के अनुयायियों के लिए 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' एक आकाश दीप है । इस ग्रंथ का अध्ययन उनके योग मार्ग को सुगम एवं सुगम्य बनाता है ।

आंध्र प्रदेश के मास्टर योग मार्ग पर चलनेवाले साधकों के लिए प्रज्ञा प्रभाकरम् एक पारायण ग्रंथ बन गया है । प्रज्ञा प्रभाकरम् की मूल भाषा तेलुगु है । इसका अंग्रेजी अनुवाद श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी के सुपुत्र डॉ.वेटूरि आनंद मूर्ति कई सालों के पहले कर चुके हैं । देश भर में फैले हुए योग मार्ग पर चलने वालों की चाह और मांग को दृष्टि में रखकर अब हम 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' का हिंदी अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं । शीघ्र ही इसका तमिल अनुवाद भी प्रकाशित होने वाला है ।

अनुवाद कला में सिद्ध हस्त डॉ.ए.बी.साई प्रसाद 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' के हिंदी अनुवादक हैं । चेन्नै के पच्चियप्पास महा विद्यालय से अवकाश प्राप्त हिंदी आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, डॉ.साई प्रसाद बहु भाषा भाषी विद्वान हैं । साहित्य अकादमी, दिल्ली के लिए अब तक तीन मोनोग्राफों को हिंदी तमिल और कन्नड़ से तेलुगु में अनुवाद कर चुके हैं । टी.टी.डी. वालों के लिए 'हरि कोलुवु' नामक ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद कर चुके हैं जो यंत्रस्त है ।

'प्रज्ञा प्रभाकरम्' ग्रंथ का एक-एक वाक्य सिद्ध करता है कि डॉ.ए.बी.साई प्रसाद कितने मंजे हुए अनुवादक है । सुलभ शैली में सरल भाषा के द्वारा आसानी से समझ में आने वाले वाक्यों का प्रयोग कर, भक्ति एवं श्रद्धा के साथ इन्होंने अनुवाद कार्य को संपन्न बनाया है । हमें आशा ही नहीं पूरा विश्वास है कि योग मार्गावलंबी साधकों के साथ-साथ आम पाठकों को भी यह अवश्य भायेगा । परम गुरू मास्टर सी.वी.वी. के संपूर्ण अनुग्रह की प्राप्ति के लिए हम हृदय से प्रार्थना कर रहे हैं ।

गुरू देव श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी, पितामह कोत्त राम कोटय्या जी के साथ उन सब लोगों के - मुख्य रूप से श्री पद्मनाभ भट्ट जी के, जो इस पुस्तक प्रकाशन के लिए आवश्यक राशि प्रदान कर रहे हैं - जिन्होंने हमारी हर तरह की सहायता की है, हम आभारी हैं ।

सर्वे जनाः सुखिनो भवंतु

- प्रभाकर ध्यान मंडली
चिन काकानि
गुंटूरू जिला
आंध्र प्रदेश

आरंभ

नीति संबंधी लंबी चौड़ी बातें करने वाले अनेक होते हैं । वे मिल भी जाते हैं । इन लोगों के निरर्थक बातों से समाज लाभान्वित नहीं होता । अपने आदर्शों को अपने सदाचार युक्त आचरणों के द्वारा प्रमाणित करने वाले ही वास्तव में महान होते हैं । वे आध्यात्मिक पथ को दर्शाने वाले मर्मज्ञ होते हैं ।

कपोत कथा - पद्य संख्या 70

पृ. सं. 2

वी. प्रभाकर शास्त्री (1925)

सदाचार युक्त कर्तव्यों का जो अचूक पालन करते हैं, जो भगवान में लीन रहते हैं, जो अपने प्रयत्नों की निरर्थकता को जानकर पीड़ित और जरूरत मंदों की सहायता करने वाले अगोचर भगवान को स्वीकार करते हैं और जो अपने बुद्धि एवं धन बल के द्वारा दूसरों की सहायता करने के लिए आगे बढ़ते हैं वे ही इहलोक और परलोक में सुख को पा सकते हैं ।

कपोत कथा - पद्य संख्या 80

पृ. सं. 27

वी. प्रभाकर शास्त्री

विशुद्ध आत्मा एवं ऋषितुल्य मनीषी श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी का भव्य परिचय उक्त दोनों उक्तियाँ सफलता पूर्वक देती हैं । आध्यात्मिकता और बहुमुख प्रज्ञा (Versatility) श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी के चरित्र की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं । उनकी आत्मा में ये दोनों - बाह्य और आंतरिक रूप से - उनके परम गुरु सी.वी.वी.

कंचुपाटि वेन्कटराव वेंकास्वामि राव के दिव्य अनुग्रह के कारण एक साथ दिखायी देते थे । श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री के प्रेरणा स्रोत एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शक श्री सी.वी.वी. ही हैं । अपने गुरू - योग गुरू - के प्रति श्री प्रभाकर शास्त्री जी को इतना लगाव था कि अकसर वे आदर के साथ उनका नाम लिया करते थे । इसका और एक कारण भी है । श्री सी.वी.वी. का नाम (कंचुपाटि वेन्कट राव वेन्कास्वामि राव) उनके विद्या गुरू श्री चल्लपिल्ला वेन्कट शास्त्री जी के नाम से (ये बीसवीं सदी के महामनीषि माने जाते हैं) मिलता-जुलता है । इसके अलावा उनके योग गुरू का नाम, भारतीयों के आराध्य देव सप्तगिरीश श्री वेन्कटेश्वर - जिसको उत्तर के लोग बालाजी नाम से जानते हैं - से भी मिलता जुलता है । अपने जीवन के संध्याकाल में प्रभाकर शास्त्री जी तिरुमल तिरुपति देवस्थान में संस्थागत सेवाएँ करने लग गये थे । उन दिनों बहुत सारे लोग तिरुपति की यात्रा दो कारणों से करते थे । पहला कारण तिरुमला के बालाजी का दर्शन होता था और दूसरा कारण तिरुपति में रहने वाले श्री प्रभाकर शास्त्री का दर्शन । तत्कालीन समाज पर उनका बड़ा जबरदस्त प्रभाव था ।

सन् 1948 में श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी ने अपने 61वें वर्षगांठ को तिरुपति में मनाया । एक दिन अपने प्रातःकालीन प्रार्थना में वे मग्न थे । अचानक उनको आत्म कथा लिखने की प्रेरणा उनके अंतःशरीर से मिली । अपने इस प्रयत्न के लिए महात्मा गाँधी द्वारा विरचित 'मै एक्स्पेरिमेन्ट्स वित ट्रूत (My Experiments With Truth)' को आदर्श माना । प्रज्ञा प्रभाकर वास्तव में उनके जीवन में घटित घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन मात्र नहीं है । पर उनके योगाभ्यास के गुरू श्री सी.वी.वी. की कृपा से उनके जीवन रूपी सरिता में प्रवहित आध्यात्मिक शक्ति का एक

दिव्य प्रकटीकरण है । मास्टर सी.वी.वी. के द्वारा प्रचार में लाया गया 'भृक्त रहित राज योग' धरती पर निवास करने वाली मानव जाति के उद्धार के लिए किया गया एक प्रयोग है । योगाभ्यास के द्वारा साधकों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देते हुए उनके आरोग्य एवं आयुर्बल को बढ़ाना इसका एक मात्र उद्देश्य है । साथ ही साथ उनको शारीरिक अनश्वरता को वरदान के रूप में प्रदान करना है । यह वरदान किसी पर थोपा नहीं जाता । पर साधक सतत अभ्यास और निरंतर भक्ति भाव से प्राप्त कर सकता है ।

श्री शास्त्री जी मास्टर सी.वी.वी. के एक प्रधान या मुख्य शिष्य थे । सन् 1916 में माध्यम संख्या (Medium No.) 330 के रूप में श्री शास्त्री जी को मास्टर सी.वी.वी. ने दीक्षा दी थी । इस योग का अभ्यास श्री शास्त्री जी ने लगातार 34 वर्षों तक बिन चूके किया । न सिर्फ शास्त्री ने सिद्धि पाई पर उनके संपर्क में आये हुए सैकड़ों लोगों की सहायता सिद्धि प्राप्ति में की । श्री शास्त्री जी दया एवं त्याग के अवतार थे । शास्त्री जी के लिए योग अत्यंत श्रेष्ठता प्राप्त करने का एक चिह्न था । इस राज योग के प्रयोगों के द्वारा पाठक इसका अनुभव अवश्य कर सकते हैं ।

प्रज्ञा प्रभाकर की रचना तेलुगु में हुई है । अन्य भाषा-भाषी इसको पढ़ नहीं पाये । उनको बड़ी निराशा हुई । मैं जानता हूँ कि तेलुगु जैसी शुद्ध शैली का अंग्रेजी में अनुवाद करना कोई आसान बात नहीं है । साधारण या आम पाठकों के लिए मैंने शास्त्री जी के मूल तेलुगु ग्रंथ प्रज्ञा प्रभाकरम् को अंग्रेजी में अनुवाद करने का निश्चय किया । सन् 1978 वर्ष के अगस्त महीने के बीस तारीख (20.8.1978) को मैंने अनुवाद कार्य शुरू किया और 1979 वर्ष के जनवरी महीने के तेईस तारीख

(23.1.1979) को पूरा किया । उन दिनों में मैं मॉरीषस् (Mauritius) में सरकारी शिक्षा अफसर (Education Officer, Government of Mauritius) के रूप में काम करता था । मैंने तब प्रण लिया कि रोज मूल ग्रंथ के दो पन्ने न सही कम से कम दो पंक्तियों का अनुवाद करूँगा । मैंने अपने प्रण को खूबी के साथ निभाया ।

सन् 1980 के अक्तूबर में मैं भारत वापस आ गया । अपनी पांडु लिपि को मैंने टंकण के लिए दिया । मेरे दोनों बड़े भाइयों ने - डॉ.वी.सुन्दर मूर्ति और श्री वी. गुरू प्रसादम् - मेरे चचेरे भाई श्री वी. आंजनेयुलु ने और मेरी भतीजी श्रीमती योग ज्योत्सना ने छपे कागज के शोधने के काम में (Proof Reading) मेरी सहायता की है । यत्र तत्र कुछ सुधार भी इन लोगों ने की है । मैं उनका आभारी हूँ । अपने समय और ऊर्जा को खर्च करने वालों को मात्र धन्यवाद देना अनुचित होगा । मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यह अनुवाद कार्य उन लोगों का भी है जितना कि मेरा ।

विश्वास का वसीयतनाम (A Testament of Faith) शीर्षक से भूमिका लिखने वाले मेरे भाई श्री गुरू प्रसादम् को जो स्वयं राजयोग के अनन्य अनुयायी हैं मैं हृदयपूर्वक धन्यवाद प्रकट करता हूँ । मेरे 92 वर्ष उम्रवाले चाचा डॉ. वी. चन्द्रशेखर शास्त्री - जो स्वयं मास्टर सी.वी.वी. के प्रत्यक्ष (Direct) माध्यम है - का विशेष रूप से ऋणी हूँ । उनके आशीर्वाद वचन और उदारता पूर्ण संदेश के लिए मैं सदा उनका आभारी रहूँगा ।

तेलुगु विश्व विद्यालय के साथ-साथ मैं इस पुस्तक के मुद्रक एवं चित्र लेखक को अपना विशेष धन्यवाद देना चाहता हूँ ।

श्री कुशवंत सिंह द्वारा उद्धृत एल्ला व्हीलर विलकाक्स (Ella Wheeler Wilcox) और हाफिज़ (Hafiz) के उद्धरणों को देकर इस प्रस्तावना को समाप्त करना चाहता हूँ :

So many Gods - so many creeds

So many Paths wind and wind

When just the art of being kind

Is all that this sad world needs

- Ella Wheeler Wilcox

(संसार को मात्र दया और धर्म की आवश्यकता है । वह इतने भगवानों को इतने धर्मों को, मोड लेने वाले इतने मार्गों को चाहता नहीं है ।)

Happiness is the only good

Place to be happy is here

The time to be happy is now

The way to happiness is to help others -

Do not hurt man -

- Hafiz

(खुशी ही सब कुछ है । अब खुश रहने का समय है । दूसरों की सहायता करने से ही खुशी मिलती है । आदमी को दर्द मत दो ।)

मैं नहीं जानता कि उक्त दोनों कवियों ने अपने सिद्धांतों का आचरण अपने जीवन में किया है नहीं । पर श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री ने उक्त सिद्धांतों का आचरण अपने जीवन काल में किया है । उक्त सिद्धांतों को आचरण में रखने का समय

आसन्न हो गया है । व्यक्ति मोक्ष की अवस्था से ही काल का विकास हुआ है । इस दशा से ही समाज का निस्तार (Emancipation) होता है ।

मास्टर जी हम सबको आशीर्वाद दें ।

- वी. आनंद मूर्ति

02.08.1991

हैदराबाद

अंग्रेजी अनुवाद की प्रस्तावना का हिन्दी अनुवाद ।

* * *

मास्टर सी.वी.वी.

आशीर्वाद

महान लोगों के जीवन वृत्तांत (Biographies) आगे आनेवाली पीढ़ियों के लिए पथ प्रदर्शक होते हैं । श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी की आत्मकथा (Autobiography) इस बात के लिए एक ज्वलंत उदाहरण है । इस ग्रंथ में दर्ज (Recorded) किये गये उनके सारे अनुभव हर दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । इन्होंने निःस्वार्थ जीवन बिताया है । दिशाहीन मानवता के लिए ये आकाश दीप थे । इस ग्रंथ में वर्णित उनके अनुभव काफी सजीव (Vivid) और विश्लेषणात्मक हैं । उनके अनुभव साहित्यिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से मानवता को प्रेरणा देनेवाले हैं । उनकी कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं था । वे दोनों एक थे । इन्होंने अत्यंत विश्वसनीय और प्रामाणिक जीवन को बिताया था । कवि के रूप में उनकी अपनी एक विशिष्ट शैली थी । कविता के लिए इन्होंने आडंबर रहित, मुहावरेदार शास्त्रीय शैली को अपनाया था ।

श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री की इस आत्मकथा को - प्रज्ञा प्रभाकरम् - जो तेलुगु भाषा-भाषी नहीं हैं, उन तक पहुँचाना है । इस दिशा में आनंदमूर्ति का यह प्रयास - अंग्रेजी अनुवाद को प्रस्तुत करना - प्रशंसनीय है ।

बड़े लोगों के जीवन वृत्तांत आगे आनेवाली पीढियों को प्रेरणा दे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले ग्रंथ होते हैं । मैं आशा करता हूँ कि चिरंजीव आनंद मूर्ति श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी की सारी रचनाओं का अनुवाद अंग्रेजी के साथ-साथ अन्य भाषाओं में लाने का प्रयत्न करेंगे । इस शुभ एवं विशेष अवसर पर मैं अपने दिवंगत

भाई श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री के प्रति अपने आदर भाव को प्रकट करता हूँ । श्री प्रभाकर शास्त्री मेमोरियल ट्रस्ट को और आयुषमान आनंद मूर्ति को अपने आशीर्वादों को देता हूँ ।

- डॉ.वेटूरि चन्द्रशेखर शास्त्री

अगस्त 2, 1991,

जूबली हिल्स,

हैदराबाद

हमारे पूजनीय गुरू श्री प्रभाकर शास्त्री जी

हमारे गुरूवर प्रज्ञा संपन्न श्री प्रभाकर शास्त्री जी एक महर्षिसत्तम एवं महातपस्संपन्न मनीषि हैं । उनका योग जीवन प्रज्ञा के सौन्दर्य से भरपूर जीवन है । एक लक्ष्य साधन के लिए उनका जन्म हुआ था । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को उन्होंने अपने जीवन का आदर्श वाक्य माना था । उनका हृदय प्रेम रस से ओतप्रोत था । उनकी प्रज्ञा महामहिमान्वित थी । बाल्यकाल से उनमें अमृत तुल्य सिद्धि को पाने की भावना अंतर्वाहिनी की तरह उनके रगरग में बह रही थी । अमरत्व भरे जीवन को प्राप्त करने के मार्ग में वे आगे बढ़े । उनकी उसी यात्रा के वर्णन को हम प्रज्ञा प्रभाकरम् के नाम से आज प्रकाशित कर रहे हैं ।

"जब तक तुमको मेरे बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होगा , तब तक मेरी प्रशंसा के पुल, हे वत्स तुम बाँधने का प्रयत्न मत किया करों । उस समय की प्रतीक्षा करना । यह मेरे गुरू जी का आदेश है । मैं उनके इस आदेश का पालन कर रह हूँ । अपने जीवन की देहरी पर खड़े होकर उस घडी का निरीक्षण आतुरता से कर रहा हूँ । हे मेरे गुरूवर मुझको आपके दर्शन का भाग्य दीजिए ।"

कुंभकोणम् के महान संत और अपने पूजनीय गुरू मास्टर जी के बारे में उक्त पद्य को श्री प्रभाकर शास्त्री जी ने लिखा था । एक असाधारण योग की स्थापना मास्टर जी ने कुंभकोणम् (तमिलनाडु) में की थी । उस योग के द्वारा अमृतत्व सिद्धि को उन्होंने अपने शिष्यों को देने की प्रतिज्ञा ली थी । मास्टर जी के शिष्य बनने के कुछ समय बाद श्री शास्त्री जी ने मास्टर जी की महानता का परिचय दुनियावालों को देने के लिए कुछ पद्यों की रचना तेलुगु में कर उनको एक पत्रिका में छपवाया था ।

इसके बारे में जब मास्टर जी को मालूम हो गया तो उन्होंने श्री शास्त्री को अपने पास बुलाया । शास्त्री को झिडकी देते हुए उन्होंने कहा : जब तक तुमको मेरे बारे में पूर्ण रूप से जानकारी नहीं होगी तब तक मेरी प्रशंसा में लेख या कविताएँ मत लिखना ।" उक्त पद्य उस घटना को याद दिलाता है । उस झिड़की के बाद मास्टर जी के बारे में शास्त्री जी ने कभी कुछ नहीं लिखा ।

शास्त्री जी का साठवाँ जन्म दिन तिरुपति में सन् 1948 को मनाया गया था । उस संदर्भ में आयोजित सभा में अपने मनोगत भावों को शास्त्री जी ने इन शब्दों में प्रकट किया था :

"आज मैं अपने साठवें वर्ष में पदार्पण कर रहा हूँ । अपनी माँ के गर्भ प्रवेश पाने के बाद मैं अब तक साठ वर्षों को बिता चुका हूँ । इस चांद्रमान वर्ष - जो प्रभवा सो शुरू होता है और अक्षय से अंत होता है - की समाप्ति के बाद साठ वर्षों के कालचक्र की समाप्ति होती है । अर्थात् जिस चांद्रमान वर्ष में मेरा जन्म हुआ था वह वर्ष दुबारा आयेगा । मैं मास्टर जी से प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपने जीवन के लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो जाऊँ ।" शास्त्री जी को लगा कि उनकी प्रार्थना मास्टर जी तक पहुँच गई है और मास्टर जी उससे कह रहे हैं : "कल तक तुम प्रभाकर थे । अब से तुम प्रज्ञा प्रभाकर हो । मेरे बारे में लिखने की योग्यता को अब तुम प्राप्त कर चुके हो ।" उस दिन से प्रज्ञा प्रभाकरम् को लिखने का श्रीगणेश शास्त्री जी ने किया । दो खण्डों में - एक एक खण्ड में एक हज़ार पन्ने - प्रज्ञा प्रभाकरम् को लिखने की एक योजना शास्त्री जी ने बनायी । उनमें योगाभ्यास संबंधी अपने अनुभवों के साथ-साथ अपने मित्रों के और मास्टर जी के अन्य शिष्यों के अनुभवों को, शास्त्री

जी सम्मिलित करना चाहते थे । इस उद्देश्य से शास्त्री जी ने प्रज्ञा प्रभाकरम् को लिखना शुरू किया । वे लिखते भी गये । अपने मित्रों से, चहेतों से, मास्टर जी के शिष्यों से संपर्क कर उनके अनुभवों को इकत्रित भी वे करने लग गये थे ।

अपने कामों से वे बहुत व्यस्त रहते थे । उनके पास ढेर सारे काम थे - अन्नमाचार्य के संकीर्तनों का प्रकाशन, अन्नमाचार्य के संगीतोत्सवों का आयोजन, कुमार संभवम् काव्य का संपादन करना और उसकी टीका करना, उत्तर हरिवंश काव्य की शुद्ध प्रति लिखकर उसके लिए टीका तैयार करना, तिरुपति के अजायब घर (Museum) के लिए कुछ अमूल्य वस्तुओ का संकलन करना आदि-आदि । इन कामों को करते हुए वे रोज़ प्रज्ञा प्रभाकरम् को लिखने के लिए कुछ समय को अवश्य निकाल लेते थे । जैसे तैसे करके वे बस उतना ही लिख पाये जितना आज हम प्रकाशित कर रहे हैं । इस बीच तिरूपति में अजायब-घर (Museum) की स्थापना और उसके लिए दूर-दूर प्रांतों से कलाखण्डों (Art Pieces) को इकट्टा करने का काम भी उनको संभालना पड़ा । इस दौड़-धूप के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था । प्रज्ञा प्रभाकरम् को पूरा करने के पहले ही वे चल बसे । यह हम लोगों का दुर्भाग्य है कि वे प्रज्ञा प्रभाकरम् को पूरा नहीं कर सके । यह किताब दु:ख के अवशेष के रूप में हमको मिला है । शास्त्री जी के योग से संबंधित इस ग्रंथ का उनके प्रथम मरण तिथि के अवसर पर उनकी स्मृति में निकालने का संकल्प हमने ले लिया है ।

शास्त्री जी को मैं पिछले पन्द्रह वर्षों से जानता हूँ । सन् 1939 में वे मद्रास छोड़कर तिरुपति चले गये थे । वे जब भी मद्रास आते थे तब वे हमारे यहाँ ही ठहरा करते थे । उनकी योग चिकित्सा के कारण ही मैं रोगमुक्त हो गया था । उस दिन

से मेरे मन में श्रद्धा की भावना दिन-ब-दिन बढ़ गई है । मैं उनका परम भक्त और अनुयायी बन गया था । जिन बीमारियों के लिए डॉक्टरों के पास कोई इलाज नहीं था, उन बीमारियों को भी अपनी योग चिकित्सा के द्वारा शास्त्री जी ने दूर किया था । मैं ऐसे कई लोगों को जानता हूँ जो रोग मुक्त होकर आज आनंदमय जीवन बिता रहे हैं ।

शास्त्री जी की नस-नस में उनकी आध्यात्मिक शक्ति फैल गई थी । आपके सामने अब एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ ।

तिरुपित में पहली बार, अन्नमाचार्य जी के पुण्य तिथि (Death Anniversary) से जुड़ी हुई, एक सभा का आयोजन बड़े पैमाने पर हो रहा था । मद्रास के उच्च न्यायालय (High Court) के उच्च न्यायाधीश (Chief Justice) श्री पाकाल वेन्कट राजमन्नार सभा के अध्यक्ष के रूप में पधारे हुए थे । दूसरे दिन शाम को श्रीमती टंगुटूरि सूर्य कुमारी की संगीत संध्या थी । सभा मण्डप संगीत प्रेमियों से कचाकच भरा था । बाहर का मौसम (Weather) बहुत खराब था । काले बादल घिर आये थे । बहुत तेज हवा बह रही थी । पूरे सभा मंडप का आंगन धूल से भर गया था । हज़ारों लोग इकत्रित हुए थे । उनमें बूढ़े, औरतें और बच्चे कई थे । अपनी जान को बचा लेने के लिए, डर के मारे वे इधर-उधर भागने लग गये थे । भगदड़ मचनेवाली थी । रंगभंग को देखकर शास्त्री जी उठकर माइक्रोफोन (Microphone) के पास गये और इस प्रकार बोलने लगे : महाजनों ! डरिए मत । वर्षा नहीं होगी । जब हम सब लोग मिलकर एक साथ प्रार्थना कर रहे हैं तब वर्षा कैसे हो सकती है । घने बादल बिखर जायेंगे । तेज हवा मंद पड़ जायेगी । आप बैठ जाइए । वर्षा नहीं

होगी । नहीं होगी, नहीं होगी । तीन बार 'नहीं होगी' कहा । लो ! अनहोनी जैसी हो गई ! शास्त्री जी के पास जो दिव्य आध्यात्मिक शक्ति थी, उस शक्ति के कारण घने गिर आये काले-काले बादल बिखर गये । हवा की गति मंद पड़ गई । वर्षा नहीं हुई । बिना किसी अडचन के संगीत संध्या का कार्यक्रम आगे बढ़ा और सफल भी हुआ । शास्त्री जी की आध्यात्मिक शक्ति का यह एक उदाहरण मात्र है । इसे कहते हैं प्रकृति पर विजय पाना । ऐसे कई उदाहरणों को हम जानते हैं ।

अमृतत्व सिद्धि के लिए किये जानेवाले इस योग की महिमा अवर्णनीय और अनिर्वचनीय है । हम उसको बखान नहीं सकते । उस योग की महिमा के बारे में, वर्णन करने वाले और उस योग को सिखानेवाले मास्टर जी की महानता को बताने वाले इस ग्रंथ को पढ़कर बहुत सारे लोग इस योग से परिचित हो जायेंगे । बहुत लोगों को यह योग विद्या लाभ पहुँचायेगा । बस इसी उद्देश्य से मैंने इस ग्रंथ को प्रकाशित करने का निश्चय कर लिया है ।

शास्त्री जी के योगानुभवों के बारे में, शास्त्री जी से अपने परिचय का पूरा-पूरा विवरण देते हुए श्रद्धांजलि शीर्षक से इस पुस्तक के लिए परिचय लिखने वाले श्री कोत्ता वेन्कटेश्वर राव के हम आभारी हैं । इस ग्रंथ की छपाई के समय हमको सहायता पहुँचाने वाले दिवंगत शास्त्री जी के शिष्य श्री तिम्मावज्झल कोदण्ड रामय्या के हम ऋणी हैं ।

बहुत कम समय में सुंदर ढंग से छाप कर श्री शास्त्री के प्रथम पुण्य तिथि के दिन ग्रंथ को हम तक पहुँचाने वाले वेलडन प्रेस (Weldon Press) के श्री भावनारायण को हम बधायी देते हैं ।

मद्रास 'खर' वर्ष, श्रावण बहुल विदिय - कुंभम् पाटि सत्यनारायण

श्रवण बहुल विदिय

प्रज्ञा प्रभाकरम् प्रथम संस्करण में प्रकाशक की बात (Publisher's Note) शीर्षक के अंतर्गत श्री कंभम् पाटि सत्यनारायण की उक्त बातें छपी थीं । हम उसका अंग्रेजी अनुवाद जो मणिमंजरि पत्रिका के वाल्यूम 2, अंक-1 छपा था, पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ फिर एक बार दे रहे हैं ।

Note : हिन्दी संस्करण के लिए अंग्रेजी का हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है ।

* * *

मास्टर सी.वी.वी. (नमस्ते)
विश्वास का शपथ पत्र

श्री वेटूरि गुरुप्रसादम्

परम पूजनीय मास्टर सी.वी.वी. ने एक नये प्रयोगात्मक योग विद्या का शुभारंभ तमिलनाडु के कुंभकोणम किया था । उन्होंने 23.06.1916 के दिन श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी को भृक्त रहित तारक राजयोग की दीक्षा दी थी । इनकी माध्यम (Medium) संख्या 330 है । सीधा मास्टर सी.वी.वी. से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी । इसे एक प्रकार से हम प्रयोगात्मक योग (Yoga) कह सकते हैं । यह मास्टर सी.वी.वी. के प्रयोगों पर आधारित नई योग विद्या थी । मास्टर सी.वी.वी. ने परे साधन (Trans-Medium) मातृश्री वेंकम्मा के अनुभवों के द्वारा इसे पुष्ट किया । उसके आधार पर वे कुछ निष्कर्षों पर पहुँचे । उन निष्कर्षों से मास्टर सी.वी.वी. ने प्रेरणा ग्रहण की। यह एक दम एक नया योग (Yoga) है । इसका लक्ष्य और उस लक्ष्य तक पहुँचने के मार्ग, दोनों अपने आप में अनोखे है । इसके पहले किसी ने इस प्रयोग को नहीं किया । यह एक नया और ताजा प्रयोग है ।

चढती जवानी के उमंग के वशीभूत होकर श्री वेटूरि प्रभाकर अपने गुरु जी सी.वी.वी. की महानता की प्रशंसा करते हुए कुछ कविताएँ की थी । श्री प्रभाकर शास्त्री की आतुरता, उत्सुकता और साहित्य प्रतिभा के बारे में जानकर मास्टर सी.वी.वी. ने उनको झिडकी देते हुए कहा था : जब तक तुम पूर्ण रूप से जान नहीं पाओगे तब तक मेरी प्रशंसा में कविताएँ तुमको लिखना नहीं चाहिए । जब तुम जान जाओंगे तब कविता की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी । शास्त्री जी ने मास्टर सी.वी.वी. के आदेश का पालन ईमानदारी से अक्षरशः किया । लिखने के लोभ पर

उन्होंने अंकुश लगा लिया ।

अपने साठवें वर्षगांठ के बाद उनको एक नई बात का बोध हो गया । उनको मालूम हो गया कि अब उनके पास वो सामग्री एकत्रित हो गयी है, जिसको वे एकत्रित करना चाहते थे । उनको लगा कि वे अब अपने मास्टरजी के बारे में खुलकर बोल सकते हैं, प्रचार कर सकते हैं और लिख भी सकते हैं । अपनी अंतरात्माक की वाणि को सुनकर वे अपनी आत्मकथा लिखने लग गये थे । आत्मकथा का अर्थ एक प्रकार से आत्मावलोकन होता है । अपने जीवन के अनुभवों को हृदय के अंदर झांक कर देखने के प्रयास को आत्मकथा कह सकते हैं । यह प्रयास महात्मा गांधी ने सत्यान्वेषण (My Experiments with Truth) लिखकर किया । श्री प्रभाकर शास्त्री का उद्देश्य अज्ञान के घोर अंधकारमय जीवन से दैवी आनंद की ओर बढने के पथ को ढूँढना था । अपने अनुभव को लिपि बद्ध करने का प्रयास ही उनका यह 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' है ।

इस आत्मकथा का आरंभ आकर्षक और मनको लुभाने वाली रीति से होता है : गुरुजी के दिव्य पदकमलों को अपने हृदय में धरकर मैं आगे बढता हूँ । गुरूजी के चरण कमल मेरे लिए चिर आनंद का स्रोत हैं । वे संपूर्ण ज्ञान को प्रदान करने वाले हैं । वे सब प्रकार के दुःखों को दूर करने वाले हैं । सुख शांति को प्रदान करने वाले महान चरण हैं । मैं उन चरणों के पास शरण लेता हूँ ।

प्रज्ञा प्रभारकम् का ढाँचा बनाते समय श्री शास्त्री जी ने कहा :

मैं तब पच्चीस वर्ष का था । मैं सख्त बीमार पड गया था । दवाइयाँ मुझ पर काम नहीं कर रही थी । मुझको रोग से किसी प्रकार की मुक्ति नहीं मिल रही थी ।

आचार्य पोतराजु नरसिंहम् पंतुलुजी ने कुंभकोणम के परम पूजनीय योग गुरु श्री कंचुपाटि वेन्कटराव वेन्कास्वामि राव जी की महानता के बारे में मुझको बताया । मास्टर सी.वी.वी. नाम से प्रसिद्ध श्री कंचुपाटि वेंकटराव वेन्कास्वामि राव जी ने मुझको योग की दीक्षा दी । उनकी चिकित्सा के द्वारा मैंने खोये हुए अपने स्वास्थ्य को पाया । उस दिन से मैं जान गया कि योग ही सबके लिए एक मात्र मार्ग है । मैंने मास्टर जी से जीवन नामक ग्रंथ के अध्ययन की कला को सीखा । जब हम गहराई से आत्मावलोकन कर लेंगे तब हम एक ऐसे बिन्दु का स्पर्श करेंगे जो कुण्डलनी नाडी के नाम से प्रसिद्ध है । यह नाडी मनुष्य के गुप्त शरीर के मध्य रहने वाली एक नाडी है । इसे मूलाधार भी कहते हैं । यह वास्तव में परम पिता का निवास स्थान है । इस नाडी के स्थान के बारे में जानकर सबको आश्चर्य होगा । यह मूत्र पुरीष कोष के बीच रहती है ।

प्रातः काल में एक पेड की छाया वृक्ष से अलग और वृक्ष से दूर दिखायी देती है । दुपहर के समय वह छाया पेड में विलीन हो जाती है । ठीक इसी तरह प्रारंभ में शारीरिक भेद (Physical Differences) हमारे अंदर वास करने वाले दैवांश से अलग दिखाई देते हैं । भेद और अंतर से भरी हुई शारीरिक चेतना प्रारंभ में अलग और पृथक दिखायी देती है । पर अंत में वे सब दैवी चेतना में अंतर्लीन हो जाती हैं । जब वह विलीन हो जाती है तब शारीरिक स्तर पर दिखाई देने वाले सारे भेद, सारे अंतर एक दम अदृश्य हो जाते हैं । तब इस संसार में रहने वाली एकता और समानता की भावनाएँ उभर आयेंगी ।

श्री प्रभाकर शास्त्री जी ने अपने शरीर का त्याग 29.08.1950 तारीख को

किया । उनकी आत्मकथा एकाएक समाप्त होने के कारण लगता है अधूरी है । साधारण पठक को भी लगता है कि यह एक अधूरा ग्रंथ है । पर सच बात यह है कि शास्त्री जी का उद्देश्य सिर्फ जिस विच्छिन्नता में वे फँस चुके थे उससे बाहर आने के बारे में लिखना मात्र था । वे मास्टर सी.वी.वी. जी की दया एवं कृपा के कारण विच्छिन्नता के चुंगल से अपने आपको मुक्त कर पाये थे । वे अपने अनुभवों का वर्णन करते हुए यह भी बता देते हैं कि वे कैसे प्रगतिशील उन्नति करने में सफल हुए । वे पहले यह बताते हैं कि वे कैसे बीमार हुए और कैसे उसका बचाव किया गया । यह भी बताते हैं कि कैसे उनका परिचय मास्टर सी.वी.वी. से हुआ और कैसे वे योगाभ्यास की दिशा में आगे बढे । बस इस हद तक उनके उद्देश्य - प्रज्ञा प्रभाकरम् लिखने का उद्देश्य - की पूर्ति हुई थी । वे, उनके अपने चारों तरफ रहने वाले शिष्यों के अनुभवों को भी इस ग्रंथ में जोडना चाहते थे । उन लागों की अपनी वाणी में उनके अनुभवों को वे लिपिबद्ध करना चाहते थे । वे इस भाग को 'गुरुपूजा' का नाम देना चाहते थे । वे इस संबंध में काफी सामग्री इकट्टा भी कर चुके थे । पर दुर्भाग्यवश उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई । वे प्रज्ञा प्रभाकरम् में अपनी बीमारी के बारे में, योग में उनकी दीक्षा के बारे में, उन्नति के मार्ग पर जिन जिन अनुभवों का अनुभव उन्होंने किया था - दिव्य दर्शन, मास्टर सी.वी.वी. जी के संदेश आदि आदि उसके बारे में ही लिख पाये थे । यहाँ तक लिखा गया भाग पैतृक संपत्ति के रूप में उनके वंशजों को मिला । ध्यान लगाकर पढने वाले पाठाक आज भी योग विद्या में दीक्षा लेने का अनुभव करेंगे । दीक्षा ग्रहण के बाद उनको प्राप्त होने वाले अनुभवों के बारे में भी अनुभव कर सकते हैं । जब वे विश्वास, भक्ति और श्रद्धा के साथ योग का आचरण

करेंगे तो उन अनुभवों को प्राप्तकर सकते हैं । यह हर एक आम व्यक्ति के अनुभव में आ सकता है ।

मास्टर सी.वी.वी. जी के द्वारा दिये गये दिव्य संदेश की प्रासंगिता में अणु मात्र भी संदेह नहीं है । उनके प्रति विश्वास रखने के लिए प्रधान प्रेरणा स्रोत का काम करते हुए यह एक नहीं कई प्रयोजनों को प्राप्त कर लेने में सहायता पहुँचा रहा है । यह योगाभ्यास सबको लगातार प्रेरणा दे रहा है । आगे भी यह अवश्य प्रेरणा देगा । व्यक्तिगत अनुभव ही प्रमाणित करते हैं कि आप योगाभ्यास के आचरण में कितनी प्रगति को पा चुके हैं । अनुभवों की प्राप्ति के लिए साधना की आवश्यकता होती है । साधना को आगे ले जाने वाले प्रधान साधन भक्ति और विश्वास हैं । साधना के लिए भौतिक शरीर अति आवश्यक है । भौतिक शरीर के बिना अनुभवों को प्राप्त नहीं किया जा कसता है । अपने इस जीवन में जितने अनुभवों को प्राप्त करेंगे वे सब मृत्यु के उपरांत उस शरीर को छोड देते हैं । दूसरे शरीर को पाने के बाद उन अनुभवों को फिर से प्राप्त करना पडता है । शरीर में स्थित त्रुटियों और कमियों को साधना दूर कर उसे निर्मल बना देती है । निर्मलीकरण के बिना उन्नति हो नहीं सकती । अगर उन्नति नहीं हे तो हम न अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं ओर न ही हम कुछ कर पायेंगे । साधना के द्वारा ही हमको शुद्धि मिल सकती है । शुद्धि के द्वारा उद्धरण मिल सकता है । इस उद्धरण के कारण सिद्धि मिल सकती है । इन सबको प्राप्त करने के लिए अपने आप को पूर्ण रूप से परमात्मा के चरणों पर अर्पण करना पडता है । हमें उनके शरण में जाना पडता है । इसके लिए मास्टर सी.वी.वी. के द्वारा दिये गये संदेशों का पालन भक्ति श्रद्धा और विश्वास के साथ अक्षरशः करना

पडता है । मास्टर जी ने कहा भक्ति और श्रद्धा के साथ योगाभ्यास करने पर ही हम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है । मास्टर ने अधिकार युक्त वाणि में कहा कि पूर्णता (Perfection) पाने के लिए समय लग सकता है । पर कोई असफल नहीं हो सकता । बस यही एक मात्र मार्ग है । इस विकल्प को छोडकर दूसरा कोई विकल्प है ही नहीं । अब अनुभव और उन्नति दोनों सही पथ पर होंगे । अंतरात्मा का मार्गदर्शन शुद्ध और दोष रहित होता है । उन्नति बस इसी मार्गदर्शन पर निर्भर रहती है । परम पूजनीय परमात्मा को जानने की जिज्ञासा हरेक में होनी है । इतना ही नहीं गुरु के द्वारा बताये गए मार्गदर्शन पर संपूर्ण विश्वास मन में होना चाहिए । अंतरात्मका की वाणि का शरण लेकर इसका अभ्यास किया जा सकता है । जब साधक प्रतिष्ठा (Sublimity) और विश्वास के साथ उसकी ओर बढता है तब उसकी उन्नति के आधार पर उसको मार्गदर्शन भी मिलता है । जिस हद तक आवश्यक है, जिस हद तक वह चाहता है उस हद तक न सही, पर उसको लाभ अवश्य मिलता है ।

''जबतक गाडी रास्ते पर चल रही है तब तक उसकी मरम्मत हो सकती है । जबतक वह चल रही है तब तक उसको चलने देना चाहिए । उसके भागों को (Parts) अलग नहीं करना चाहिए । जब तक कोई शिकायत नहीं है तब तक उसकी मरम्मत भी नहीं होनी चाहिए । अगर ऐसा किया जाय तो चालक का जीवन अस्तव्यस्त हो जायेगा । त्यजन (Renunciation) मेरा मार्ग नहीं है । सामान्य जीवन के विघ्नों से हमें बचना चाहिए । गृहस्थाश्रम को छोडना नहीं चाहिए । सन्यासी बनने की कोई आवश्यकता नहीं ।''

''यहाँ मेरे पास रहकर मेरे सम्मुख रहने का लाभ उठाना चाहते हो न ? यही तुम्हारी इच्छा है न ? मैं हमेशा तुम्हारे ह्रदय में हूँ । तुम्हारी भलाई करने और सहायता करने के लिए जिस शक्ति और चैतन्यता का अनुभव मेरी उपस्थिति में है उसी प्रकार का अनुभव तुम जहाँ भी रहोगे, कर पाओगे । सुबह किये जाने वाली प्रार्थना का असर शाम तक रहेगा । जिस प्रकार की उन्नति की आवश्यकता है, उस प्रकार की उन्नति अवश्य होगी ।''

''जो शक्ति काम कर रही है वह बिजली जैसी नहीं है । अगर बिजली का उपयोग आवश्यकता से अधिक करेंगे तो वह हमको हानी पहुँचाएगी । पर इस योगाभ्यास के कारण जो सजीव शक्ति काम करती है वह कोई अचल शक्ति नहीं है । वह तो एक संचालक चेतना (Dynamic Force) है । यह हानी नहीं पहुँचाती है । अगर तुम इसको अधिक मात्रा में चाहोगे तो वह कभी काम नहीं करेगी ।''

''अगर तुम्हारे मन में पूछताछ करने की और जानने की तीव्र इच्छा है तो वह काफी है । तुम्हारी अंतरात्मा की वाणि तुम्हारा मार्गदर्शन करेगी । अगर तुम भक्ति और श्रद्धा से उसका पालन करोगे तो तुम खुद धीरे-धीरे जान जाओगे कि तुमको मार्गदर्शन कहाँ से मिल रहा है ।

कोई भी व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से या अलग रीति से संपूर्ण सिद्धि को पा नहीं सकता है । अपने आप से, बंधु बांधवों से, प्रेम को शुरू होना चाहिए और विश्वभर में फैल जाना चाहिए । जब तक तुम्हारा प्रेम फैल नहीं जाता तब तक तुम उस परम तत्व को जान नहीं पाओगे । सिर्फ ऐसा व्यक्ति ही पूर्णता को प्राप्त करता है और दूसरों को सही मार्ग पर ला सकता है । परमात्मा एक है, अखण्ड और सर्व व्यापि

(Universal) है । उस पूर्णता (Absolute) को जानने के लिए तुमको विस्तृत हो जाना पडेगा । दूसरों के प्रति जो प्रेम भावना तुझमें है उसको भी फैलाना पडेगा । जब तक इस संसार के झंझटों से झूझते ही रहोगे तब तक इस संसार के जाल में फँसे ही रहोगे । बाहर जिस अंतर और पृथकता को देखते हो उसी प्रकार अंदर की एकता और समानता को देखने की शक्ति तुम में उभर आनी चाहिए । तभी संपूर्णता प्राप्त की जा सकती है । इस योगाभ्यास का यही लक्ष्य और गम्य है । हमारी संपूर्णता भविष्य में निक्षिप्त है । इस संपूर्णता को भूत में हमने हासिल नहीं किया है । कल के आधार पर प्राप्त की गई उन्नति भविष्य में संपूर्णता को पाने के मार्ग को सुगम कर देगी ।''

''जैसे-जैसे हम दिव्य (Divine) के पास चले जायेंगे वेसे वैसे हम लोगों का ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ बनता जायेगा ।'' जैसे-जैसे मनुष्य उन्नति करता जायेगा वैसे-वैसे वह अंतरात्मा की वाणि को स्पष्ट सुन पायेगा । यह वाणि उनको उचित और सही मार्ग पर ले जायेगी । उसका मार्गदर्शन करेगी । समस्त ज्ञान की उन्नति ऐसे ही होती है । जैसे ही मनुष्य उन्नति के पथ पर पहुँचता है वैसे ही उसके सोच विचार, उनकी अभिव्यक्ति और उसके कार्य एक सुरा में बदल जाते हैं । इस तरह वह मनसा वाचा कर्मणा शुद्ध और पूर्ण बन जाता है । इस अवस्था तक पहुँचने के बाद ही उसका ज्ञान पूर्ण और दोष रहित बन जाता है । यह बात इस विश्व के रहस्यों को और सृष्टि के रहस्यों को जानने के मामलों पर अधिक लागू होती है । ज्ञान को प्राप्त करने के प्रयत्न इस दिशा में किये जा रहे हैं । नाडी ग्रंथ भी इस दिशा में - ज्ञान प्राप्ति की दिशा में - किया गया एक प्रयत्न है ।''

''अगर तुम नाडी ग्रंथ को या इतर बाह्य स्रोतों को विश्वासनीय मानकर आगे बढोगे तो अंतरात्मका की वाणि को सुन नहीं पाओगे । बाह्य स्रोतों पर तुम्हें निर्भर नहीं होना चाहिए । उस निर्भरता को छोड देना चाहिए । तुम्हें अंतरवाणि को सुनने की आदत डाल लेनी है । उसके अनुसार ही तुम्हें चलना है । व्यक्तिगत अनुभवों को प्राप्त करना ही उन्नति का प्रमाण चिह्न है ।''

''किस कारण से तुम मेरे शिष्य बने हो ? उस कारण का अनुसरण करो । नाडी ग्रथों का अध्ययन करने के बाद तुम मेरे शिष्य नहीं बने हो । मेरे शिष्य बनने के बाद ही तुम को नाडी ग्रंथों के बारे में जानकारी हो गयी है । मेरे वचन और कार्य दोनों में प्रमाण (Authority) है । ये बाह्य वस्तुओं पर निर्भर नहीं है । नाडी ग्रंथ के आधार पर तुम मुझ पर और मेरे कार्यों पर विश्वास करना छोड दो ।''

''मेरे योग से पूर्ण रूप से कोई भी व्यक्ति सहमत नहीं हो पायेगा । बरगद पेड का बीज यह नहीं जानता कि अंकुरित होने के बाद जब वह बढ़ता जायेगा, तब कितनी शाखाएँ किस दिशा में कब और कैसे फैल जायेंगी । ठीक इसी तरह सृजनात्मक संसार का विकास (Evolution) तिस पर योग का विकास कब होगा कोई नहीं जान सकता । भविष्य की उन्नति पहले से देखी नहीं जा सकती है । विस्तृत (Comprehensive) ज्ञान प्राप्त करना और भविष्य के बारे में ठीक ठीक बताना, उन्नति कर योग सिद्धि पाना आदि आदि असंभव है । मुझे भी पूर्ण रूप से नहीं अंश रूप में ही वह दिव्य ज्ञान प्राप्त है ।

''अब तक जिस उन्नति को पा चुके हो वह सही है और ठीक भी है । यह आगे की उन्नति को दिखा रही है । वह दृश्य अपने आप खुल जायेगा । तब तक

तुम्हें प्रतीक्षा करनी होगी । उपदेशों का पालन करो । बिना चूके योगाभ्यास को जारी रखो । पूर्ण विश्वास और आनंद के साथ योगाभ्यास करते रहो ।''

''मास्टर सी.वी.वी. ने एक बार अपने शिष्यों से कहा कि आप सब लोगों में योगाभ्यास के बीज़ अच्छे बो गये हैं । पानी से सींचकर उसे अच्छा फल फूल वाले पेड बनाकर उससे लाभ उठाने का जिम्मा तुम लोगों का ही है ।'' उन्होंने लाक्षणिक रूप से (Allegorically) यह भी कहा कि अब मक्खन तुम्हारे हाथ में है । इसे घी बनाने का काम तुम्हारा ही है । यह काम भक्ति और श्रद्धा के साथ योगाभ्यास को जारी करने से ही संभव है । एक दिन के लिए भी चूकना नहीं चाहिए ।''

प्रज्ञा प्रभाकरम् मास्टर सी.वी.वी. के प्रति और उनके योग के प्रति श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी के श्रद्धा, भक्ति और विश्वास को प्रकट करने वाला शपथ पत्र (Affidavit) है । यह पाठकों में भी विश्वास को पैदा करता है । यह एक पथ का प्रदर्शन करता है । मास्टर सी.वी.वी. के प्रति श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री के मन में अचल, सुदृढ, अचंचल ओर पूर्ण विश्वास था । जब आप के मन में मास्टर सी.वी.वी. के प्रति अटूट विश्वास है तो उनकी कृपा तुम्हारी रक्षा सदैव करती रहेगी । संपूर्ण स्वस्थ्य, आनंदमय अस्तित्व के साथ-साथ प्रेरणा देने वाली अंतः चेतना को मास्टर सी.वी.वी. से वरदान के रूप में पा सकते हैं । इन सबके लिए मैं एक जीवंत साक्षी हूँ । कृपया इस पर ध्यान दीजिए ''श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री'' ने कहा है ।

गुलाब की कली अब खिल गयी है । उसके कांटेदार पत्ते झड चुके हैं । सत्य ज्ञान और आनंद का दिव्य सुगंध चारों ओर फैल रहा है । यह चित्ताकर्षक और मनमोहक सुगंध है ।

मास्टर सी.वी.वी. के चरण कमलों के पास बैठकर योगाभ्यास जिन लोगों ने किया वे सब धन्य है । अचंचल विश्वास के कारण मास्टर सी.वी.वी. के द्वारा प्रचार में लाये गये योग का आचरण कर मास्टर सी.वी.वी. के उपदेशों का, जो एक मन से, मनसा वाचा, कर्मणा पालन कर रहे हैं, वे भी धन्य है । मास्टर सी.वी.वी. के द्वारा दर्शाया गया मार्ग एक कल्याणकारी मार्ग है । इस मार्ग पर चलने वाले सुख, संतोष और संपूर्ण स्वास्थ्य के भागीदार और हकदार बन सकते हैं ।

मास्टर सी.वी.वी. हम सब पर दया करें ।

ता : 18.06.1991

- गुरु प्रसादम
हैदराबाद

सूचना : 'प्रज्ञा प्रभाकरम्' में श्री शास्त्री जी के द्वारा लिखित मास्टर सी.वी.वी. के संदेश का यह अक्षरशः अनुवाद नहीं है । उसका सारांश देने का प्रयत्न मात्र यहाँ किया गया है ।
[अंग्रेजी अनुवाद के लिए लिखी गई अंग्रेजी फोरवर्ड (Forword) का हिन्दी अनुवाद]

श्रद्धांजलि

''Great love hath no man than this
That a man lay down his life for his friends''

St. John XV, 12

''मित्रों के लिए अपने प्राणों की बलि देने से बेहतर उत्कृष्ट प्रेम को आदमी नहीं जानता है ।'' यह ईसा मसीहा का उत्तम संदेश है । श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी का पावन जीवन उक्त उत्तम संदेश का एक ज्वलंत उदाहरण है । वे सबके मित्र थे और सब इनके मित्र थे । वे मात्र मित्र नहीं आप्त मित्र थे । जो लोग शारीरिक एवं मानसिक रूग्मता के शिकार होने के कारण बहुत दुखी थे वे नहीं जानते थे कि उनके दुख, निराशा और शारीरिक रूग्मता के कारण क्या हैं । निराशा के कारण वे नहीं जानते थे कि वे अपनी रुग्मता से मुक्ति कैसे पा सकते हैं । उन लोगों की पीडा या बाधा को शास्त्री जी अपनी पीडा और बाधा समझते थे । खुद को उनकी परिस्थितियों में रखकर वे उनके दुखों को, कष्टों को दूर कर देते थे । उनके लिए वे दिन रात चिन्तित रहते थे । अपनी योग शक्ति से वे उनको रोग से मुक्त करते थे । उन लोगों की परेशानियों को दूर करते थे । उन लोगों के मार्ग के सभी अवरोधों को देर करने के बाद वे उन लोगों के वर्तमान पर और उनके भविष्य की उन्नति पर अपनी दृष्टि डालते थे । जब उन पर संकट आ पडता था तब उन लोगों की रक्षा के लिए वे दौड़ पडते थे । वे मनु के ''समर्थ मापत्सख'' को सिद्ध करने वाले व्यक्ति थे । तेलुगु के महाभारत में श्री कृष्ण का संबोधन युधिष्ठिर इस प्रकार करते हैं :

''हे परमात्मा ! हमारे पिता पाण्डु हमारी रक्षा का भार आपको सौंपकर चल

बसे हैं ।'' शास्त्री जी की चिकित्सा के कारण लाभ पाने वाले भी युधिष्ठिर जैसा ही उनकी - शास्त्री जी की - भरपूर प्रशंसा करते हैं । अगर वे करते हैं तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है । उस करुणानिधि की करुणा को पानेवालों में मै भी एक हूँ । अपनी कृतज्ञता या आभार प्रकट करने के लिए ही मैं इस श्रद्धांजलि को लिख रहा हूँ ।

कैसे बीमारी को तप के द्वारा दूर किया जा सकता है ? कैसे एक की बीमारी दूसरे की सहायता से दूर हो सकती है ? ऐसे सवाल कई लोग पूछ लेते हैं । ये न्याय संगत सवाल ही है । भुक्त भोगी बनने के पहले इस प्रकार के संदेह और सवाल मेरे मन में उठा करते थे । जिन बातों को खुद मैं जानता हूँ उनका उदाहरण देते हुए जो सहृदय वाले है उनके संदेहों को दूर करने का प्रयत्न करूँगा । इस प्रकार करने से शास्त्री जी के मधुर मृदुल स्वभाव को फिर एक बार स्मरण करने का सुअवसर मुझे मिल सकता है । प्रज्ञा प्रभाकरम् की रचना जिस उद्देश्य के लिए था जिस प्रयोजन के लिए किया था वह कुछ हद तक स्पष्ट हो जायेगा ।

'भृक्तरहित तारक योग' का अभ्यास शास्त्री जी ने तीस साल तक लगातार किया था । इसके बाद ही प्रज्ञा प्रभाकरम् को उन्होंने लिखना आरंभ किया था । इन तीस सालों में कई महत्वपूर्ण और गणनीय अनुभवों को वे पा चुके थे । अपने अनुभवों को, अपने योगाभ्यास के साथियों के अनुभवों को, जो उनसे लाभान्वित हुए थे उनके अनुभवों को एकत्रित कर तीन अलग अलग खण्डों में वे लिपि बद्ध करना चाहते थे । अगर उनको अपने संकल्प को लिपिबद्ध करने में सफलता मिल गयी हाती तो एक अच्छा लोकोपयोगी ग्रंथ तेलुगु साहित्य को मिल सकता था । वह रचना कई क्षेत्रों में,

मुख्य रूप से योगाध्यात्मक साधना के क्षेत्र में, मन और शरीर से संबंधित विज्ञान के क्षेत्र में, रोगनिदान के क्षेत्र में आदि आदि में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती थी । ला सकने की संभावना थी । काश यह पूरा होता ! प्रज्ञा प्रभाकरम् की रचना आरंभकर प्रस्तुत भाग तक (हम उसी भाग को प्रकाशित कर रहे हैं) लिख गये थे । इस बीच तिरुमल तिरुपति देवस्थानम के अधिकारियों ने शास्त्री जी को तिरुपति में एक अजायब घर के निर्माण के भार को सौंपा । उस अजायब घर के निर्माण के लिए उन्होंने दिन रात को एक किया था । खाना पीना सोना आदि को वे बिलकुल भूल गये थे । साधारण सुविधाओं पर भी उनहोंने ध्यान नहीं दिया था । बाघ जैसे खूँखार जानवरों से भरे कडपा जिला के जंगलों में और कम्यूनिस्ट पार्टी के गोरिल्ला दलों के लिए मशहूर कृष्णा जिला के मुक्तयाला, नैजाम प्रांत के नल्लगोण्डा (आज नैजाम प्रांत को तेलंगाणा कहते हैं) के टीलों के चप्पा चप्पा खोजकर जैन महावीर, भगवान बुद्ध और हिन्दू भगवानों के सुन्दर और बढिया विग्रहों का संकलन कर उन्हें तिरुपति तक सुरक्षित पहुँचाने में वे सफल हुए ।

शास्त्री जी के अथक परिश्रम से प्राप्त महावीर, बुद्ध और हिन्दू देवी देवता के विग्रह साबित करते हैं कि आंध्र प्रांत के लोग ऋगवेद के 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः ''(1-89+) और ''एकम् सत् विप्रा बहुधावदेदन्ति'' जैसी सूक्तियों में विश्वास रखने वाले और उनको अपने आचरण में रखने वाले थे । कालान्तर में लोगों के मन में वैदिक धर्म और वर्णाश्रम धर्मों के प्रति प्रेम और आराधन की भावना बढ़ गयी थी । वैदिक यज्ञ यागादि में उनका विश्वास और बढ गया था । धार्मिक सहिष्णुता की भावना मृगमरीचिका बन गई तो जैन और बौद्ध आश्रम और विहारों को ध्वंस करने

लग गये थे । जो लोग उनकी बातों को मानने के लिए तैयार नहीं थे उनको अनेक रूपों से सताने लग गये थे । उन दिनों के घोर हत्याकाण्ड में, बाद को चढ़ आने वाले मुसलमानों के विध्वंस काण्ड में, आज के रजाकारों और कम्यूनिस्टों के उत्पात में कोई भेद नहीं हैं । उन दिनों से लेकर आज तक के मनुष्यों के पशुवत क्रूर व्यवहार में कोई परिवर्तन आया नहीं है । अपनी बात को न मानने वाले पर जबरदस्ती करने के अपने स्वभाव को क्या मनुष्य कभी नहीं छोड सकता ? इन विग्रहों और मूर्तियों के साथ श्री कालहस्ति रियासत के अधिपतियों की उदार अनुमति की सहायता से उनके यहाँ के प्राचीन हस्तलिखित भंडार को छानबीनकर ढेर सारे अप्रकाशित पांडु लिपियों को, चित्रों को, रियासत के पूर्वजों के कवचों को, उनके हथियारों को संग्रहीत कर तिरुपति लाये । दैनिक आंध्रप्रभा के संपादक श्री नार्ल वेन्कटेश्वर राव की सहायता से बन्दर के चित्रकार श्री कोटा सुब्बाराव जी द्वारा लिखित अमूल्य चित्र लेखनों को (Painting), मूर्तियों को तिरुपति के म्यूजियम ले आये । उक्त महत्वपूर्ण कार्यों को करते हुए श्री शास्त्री जी को तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के द्वारा प्राच्य कलापीठ के तत्वावधान में ताल्लपाका अन्नमाचार्य की पुण्य तिथि को मनाना, उनकी रचनाओं को प्रकाशित करना, पावलूरि के गणित ग्रंथ, उत्तर हरिवंशम्, लक्ष्णोद्धारम, नन्नया के पूर्व की आंध्र (तेलुगु) भाषा जैसे ग्रंथों के शुद्ध प्रतियों को तैयार करना, उनकी व्याख्या करना, शोध कार्य को जारी रखते हुए नन्नेचोड द्वारा विरचित कुमार संभवम के लिए टीका लिखना आदि आदि कार्यों को उन्हें एक साथ करना पडा । अपने कर्तव्यों को उन्होंने ठीक तरह से निभाया भी । म्यूजियम के लिए आवश्यक चीजों को एकत्रित करने में उनको कई कठिनाइयों का सामना करना

पडा । एक बार उनको मालूम हुआ कि एक गाँव में, जहाँ तक पहुँचने के लिए रास्ता नामक कोई चीज़ नहीं थी - एक अनमोल मूर्ति है । उनको यह भी मालूम हो गया कि बंबई के कुछ सेठ मुँह माँगा दाम देकर उसको खरीदने के लिए उस गाँव को आ रहे हैं । अगर पहुँचने में देरी हो जाती तो वह अनमोल मूर्ति आंध्र के सरहदों को पारकर चली जाती । तब तक उनका स्वास्थ्य बिगड चुका था । अपने स्वास्थ्य या अपने तकलीफों की परवाह न कर उस गाँव में वे पहुँच गये । उनको मालूम हुआ कि गाँव की एक पगडंडी पर वह मूर्ति पडी हुई है और घास काटने की हँसुआ के घार को तेज करने के लिए उस पत्थर को वहाँ के किसान उपयोग में ला रहे हैं । कुछ लोग पैर को लगे कीचड को साफ करने के लिए उसका उपयोग कर रहे हैं । उस मूर्ति को खोदकर बाहर निकालने के लिए मदद करने वाला भी वहाँ कोई नहीं था । हम उस मूर्ति की महत्ता बताकर खोदकर मान लीजिए, बाहर निकालते । तो गाँव के लोग कहेंगे कि अगर बात यह है तो हम इसे ले जाने नहीं देंगे । इसे अपने गाँव में रख लेंगे और इसकी आराधना भी करेंगे । गाँव वालों को समझाकर उस मूर्ति को गाँव तक ले आना कोई आसान काम नहीं था । यह तो लाक्षागृह से पांडवों को निकालकर उन्हें एकचक्रपुर तक पहुँचाने के बराबर था । इस मुश्किल काम को शास्त्री जी ने बहुत ही कम समय में - सात आठ महीनों में - कम पैसे खर्च कर पूरा किया । इनके दो विद्यार्थियों ने मुख्य रूप से उदयगिरि श्रीनिवासाचार्य ने उनकी बहुत सहायता की । अगर इस काम को तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् वाले किसीको सौंपते तो अधिक से अधिक लोगों की सहायता लेकर बहुत पैसों को खर्चकर कम से कम वे बीस वर्ष लेते ।

इस संदर्भ में मुझको एक घटना की याद आ रही है । गुंटूर के एक ऐसे व्यक्ति के साथ, जिनके बारे में वे जानते तक नहीं थे, कई घंटों के अपने अमूल्य समय को बिताकर, शास्त्री जी संगमरमर के एक पत्थर के टुकडे को लाये । उस पत्थर पर कुछ खोदा गया था । उसी दिन रात को वे तिरुपति के लिए रवाना हुए । उसको उन्होंने बहुत ही सावधानी बरताकर अपनी चीजों के साथ रख लिया । ऐसे संभलकर उसे रखा मानो वह पत्थर का नहीं कांस का टुकडा है । हम उनकी परेशानी को समझ नहीं पा रहे थे । रेलवे स्टेशन पहुँचने पर उन्होंने बताया कि देखो यह एक अनमोल शिल्प है । मेरे स्थान पर अगर डूब्रेल (Dubreuil) होता तो इस शिल्प के लिए कम से कम दस हजार रुपये देता । अगर इस छोटे से शिल्प का मूल्य दस हजार रुपये है तो उनके द्वारा संकलित लोहे की मूर्तियों और विग्रहों का मूल्य कितना होगा, हम अंदाजा लगा सकते हैं ।

आज ये सारे अमूल्य कलाखण्ड तिरुपति के अजायब घर में उपेक्षित पडे हैं । उनका कालनिर्णय करने वाला, उनकी विशेषता को, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से आंकने वाला, उन शिल्पों को वाणि देने वाला तिरुमल तिरुपति देवस्थानम के यहाँ एक भी नहीं है ।

म्यूजियम का निर्माण और अपूर्व ग्रंथों के शुद्ध प्रति को तैयार करना इन दोनों पाटों (Millstone) के बीच पिस जाने के कारण श्री शास्त्री जी का स्वास्थ्य धीरे-धीरे

बिगडने लग गया था । इस बीच उनको मालूम हुआ कि गुंटूर जिले के एद्दनपूडि नामक एक गाँव के एक कुए में कुछ मूर्तियों को छिपाया गया है । उनको लाने के लिए दुर्दैव की प्रेरणा से वे वहाँ पहुँचे । वर्षा में बैल गाडी में वे चल पडे ।

बैल गाडी कीचड में फँस गई । गाडी से उतरकर घुटनों तक के कीचड में वे चल पडे । वे तब तक साठ को पार कर चुके थे ।

अपने मन, स्वभाव और शरीर से वे सुकुमार थे । स्थूलकाय वाले शास्त्री जी ज्वर पीडित होकर घर पहुँचे । पहले से ही वे बीमार थे । उनका स्वास्थ्य उस एद्दनपूडि यात्रा से और बिगड गया । अपने स्वास्थ्य की परवाह न कर पलंग पर लेटकर, लेटे लेटे ही वे अपने कामों को करने लग गये थे । अपने योग के बल पर अनेकों को मृत्यु के मुख से खींचकर वे बाहर ला चुके थे । उनसे स्वास्थ्य लाभ पाने वाले अनेक लोग उनके चारों ओर थे । फिर भी वे उनको बचा नहीं पाये । वे स्वर्ग सिधार गये । उनके स्वर्गावास की खबर कवि सम्राट श्री विश्वनाथ सत्यनारायण तक पहुँची । कुठारघात समान इस खबर को सुनकर अनजान में उनके मुँह से निकला - ''तुझ जैसे महात्मा पर भी मृत्यु ने अंत में अपना विजय केतन को फहराया है ।'' शास्त्री जी के जितने चाहने वाले, श्रद्धा भाव रखने वाले जितने भी लोग थे, उन सबकी मनोभावना को कवि सम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण जी का वह एक वाक्य सशक्त प्रकट करता है । दूसरे दिन की पत्र पत्रिकाओं में श्री शास्त्री जी के निधन समाचार के साथ असाम के भूचाल के कारण हिमालय के कुछ शिखरों का गायब होने की खबर भी छपी थी । वास्तव में शास्त्री जी अध्यात्मिक हिमालय श्रेणी के एक उत्तुंग शिखर थे जो मृत्यु रूपी भूकंप के कारण अगोचर हो गया है ।

प्रज्ञा प्रभाकरम् को शास्त्री जी एक महाग्रंथ के रूप में रचना चाहते थे । उनके निधन के कारण यह रचना असंपूर्ण रह गई । जहाँ तक वे लिख पाये थे वहाँ तक को प्रस्तुत रूप में प्रकट करने का अवसर आ गया है । यह हम सबके लिए

अपार दुःख की बात है । छपाई का पूरा खर्च दिवंगत शास्त्री जी के प्रिय शिष्य मद्रास शहर के निवासी श्री कंभमपाटि सत्यनारायण श्रेष्ठी जी उठा रहे हैं । अपने गुरु के प्रति वाले श्रद्धा भाव को जताने के लिए - जिनकी सेवा शिष्य के रूप में उन्होंने बीस साल की थी - श्री कंभममाटि सत्यनारायण श्रेष्ठी जी इस ग्रंथ को प्रकाशित कर रहे है । श्री श्रेष्ठी जी नवनीत हृदय वाले हैं । ये मद्रास शहर के मक्खन व्यापारी है । जब शास्त्री जी मद्रास शहर आते थे तब सब मित्र इन्हीं के यहाँ शास्त्री से मिलने एकत्रित हुआ करते थे । सब अतिथियों का सत्कार वे प्रेम से किया करते थे । हम श्री श्रेष्ठी जी के ऋणी हैं ।

श्री शास्त्री जी से मेरा परिचय :

सन् 1939 के मई महीने में श्री शास्त्री जी से परिचित होने का सौभाग्य मिला । इसके पहले पिछले दस महीनों से मैं सख्त बीमारी का शिकार बन गया था । 106^0 के तीव्र मलेरिया ज्वर से मैं पीडित था । अंग्रेजी दवाइयों और इन्जेक्शनों के कारण मुझको थोडा बहुत आराम मिला था । अगर उस दशा में अंग्रेजी दवाइयों को लेना बंद करता तो, मैं नहीं जानता क्या हुआ होता । इलाज के लिए डाक्टर लोग क्वइना (quinine) का नुस्खा दिया करते थे । लोगों ने बताया कि वह दवा शरीर के लिए हानिकारक है । यह भी मुझको बताया गया कि होमियोपति (Homeopathy) में उसका उपयोग नहीं होता है । मेरे दिमाग में यह बात बैठ गई है कि होमियोपति को मुझे अपनाना है । इस बीच होमियोपति की दवाइयों को लेते लेते दो और महीने बीत गये । होमियोपति से मुझको लाभ नहीं मिला । इसके बाद मैं आयुर्वेद की दवाइयों की ओर मुडा । कई कडवी दवाइयों को मै निगल गया ।

उन दवाइयों में कलकत्ता (आज इसका नाम कोलकता है) वालों की एक दवाई थी । उसका नाम है पंचतिक्ता । यह मात्र अपने नाम से पंचतिक्ता है पर वास्तव यह प्रपंच तिक्ता (संसार को तेलुगु में प्रपंच कहते हैं । हिन्दी में भी इसका अर्थ संसार ही है) अर्थात् दुनिया भर की कडुवाहट इस दवाई में थी । भगवान करे हमारे दुशमन को भी इसे खाना न पडे । इसके बाद मैं देहाती दवाइयों (Country Medicines) को खाने लगा । वह देहाती डाक्टर एक फुर्तीला व्यक्ति था । वह चाहता था कि देहाती दवाइयों पर वाला मेरा अविश्वास दूर हो जाय । इसलिए कुछ मीठी दवाइयों को दिया करता था । खाने की चीजों के जो कडे नियम थे उनको भी उसने ढीला कर दिया । इसके बावजूद भी मुझको आराम नहीं मिला । फिर एक बार मैं अलोपति (alopathy) की ओर चला गया । तब तक मेरे शरीर की स्थिति में काफी बदलाव आ गया था । मेरे शरीर का वजन 20 पौन (Pound एक पौंड = 0.4356 grams होता है) कम हो चुका था । शाम को शरीर का ताप 99.5 तक बढ जाता था । अपने मनोबल को मैं खो बैठा था । नाडियों की दृढता में ढीलापन आ बस गया था । किसी प्रकार के उद्वेग को मैं सह नहीं पाता था । रातों की नींद हराम हो गई थी । खाया खाना शरीर में टिक नहीं पाता था । ऐसी हालत में अंग्रेजी दवाइयों से थोडा आराम मुझको मिला । मेरी बीमारी के कारणों को कोई जान नहीं पाया । डाक्टर ने कहा शायद मैं भय का शिकार बन गया हूँ ।

ला अप्रेन्टिस (Law Apprentice) परीक्षा देने के लिए मुझे चेन्नपट्टनम (मद्रास शहर को तेलुगु वाले चेन्नपट्टनम कहते हैं) इस बीच जाना पडा । मुझे, बीमारी के कारण, अपने शारीरिक बल पर संदेह हो गया । मुझे लगा कि मैं रेलगाडी

से सफर कर मद्रास की मोटर गाडियों अर्थात् बसों (Busses) को चढ और उतर नहीं पाऊँगा । दिल को मजबूत कर रेल गाडी से सफ़र कर चेन्नपट्टनम के स्टेशन में उतर गया । मैंने अपने एक मित्र को मेरे आने की सूचना पहले दी थी । वे मेरे मित्र स्टेशन में मेरी राह देख रहे थे । जैसे तैसे करके उनकी सहायता से होटल पहुँचा । वहाँ से परीक्षा देने गये । परीक्षा देकर चेन्नपट्टनम के एक सुप्रसिद्ध डॉक्टर से मिला । डाक्टर जी का अपना एक नर्सिंग होम (Nursing Home) था । मुझको वहीं दस दिनों के लिए भर्ति होने के लिए डाक्टर ने कहा । नर्सिंगहोम का किराया एक दिन के लिए पाँच रुपये थे । ''दस दिनों के बाद'' ही डॉक्टरों ने कहा ''कुछ निर्णय लिया जा सकता है ।'' भर्ति होने के दिन को तै कर मैं होटल पहुँच गया ।

गुंटूर से चेन्नपट्टनम के लिए रवाना होने के पहले श्री अन्नव लक्ष्मीनारायण ने - तेलुगु के बहु चर्चित सामाजिक उपन्यास 'मालपल्ली' (दलितों की बस्ती) के लेखक हैं - श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी के योग की महानता के बारे में, उनकी चिकित्सा के विधि विधानों के बारे में मुझको पूरा पूरा विवरण दिया था । कुछ दूर की सोचकर मैंने श्री अन्नव जी से कहा : कृपया आप मेरे बारे में लिखते हुए उनके नाम पर एक खत मुझे दीजिए । उन्होंने एक चिट्टी दी । उस चिट्टी को लेकर मैं एक दिन सुबह तिरुवल्लिकेणि (अंग्रेजी में Triplicane) के वेन्कटरंगम् पिल्लै गली में रहने वाले शास्त्री जी के यहाँ गया । जाते जाते मैं अपने साथ चार संतरों को ले गया । चार नंबर वाले उनके घर पर पुँचकर मैंने दरवाजा खटखटाया । अंदर जाकर मैंने शास्त्री जी को देखा । उनको देखते ही मेरे नीचे का जबडा अपने आप गिर गया ।

श्री शास्त्री जी की रचनाओं को मैं पढ चुका था । उनके बारे में मुझे कुछ भी

मालूम नहीं था । फिर भी उनकी रचनाओं के आधार पर मैं अपने मन में एक चित्र की कल्पना कर चुका था । मैंने सोचा था कि वे न बिलकुल दुबले पतले होंगे और नहीं तगडे भारी शरीर वाले होंगे । मेरी कल्पना के अनुसार वे सुनहरे रंगवाले होंगे और सभी धार्मिक अनुष्ठानों को बडी कट्टरता से पालन करने वाले और चित्ताकर्षक कद वाले होंगे । पर वे निकले मोटे और श्याम रंग वाले । मैं उनको पहचान नहीं पाया । उन्होंने ही पहले मुझसे पूछा : कहिए जी ! आप कौन है । उनकी स्निग्धवाणि ने मुझको परास्त कर दिया था ।

मेरी कल्पना से भी उनकी वाणि अधिक सिनग्ध निकली थीं । उनकी वाणि की स्निग्धता से बाहर आने के लिए मुझको कुछ समय लगा । हाथ जोडकर मैंने कहा : मैं गुंटूर का रहने वाला हूँ । इतने में मैंने शास्त्री जी के घर के एक कमरे से बाहर आने वाले अन्नव लक्ष्मी नारायण पंतुलु जी को देखा । वे बाहर आये । बाहर आकर मेरा परिचय शास्त्री जी से करवाया । उनसे - श्री उन्नव से - मुलाकाल चेन्नपट्टनम में हो सकती है, मैं सोच नहीं पाया था । उन्होंने कहा चेन्नपट्टनम में एक काम था । इसलिए कल रात मैं यहाँ आ गया हूँ ।

शास्त्री जी के घर पहुँचने पर मैंने देखा वे दंत धावन कर रहे हैं । तब समय सुबह के सात बजे थे । मैंने सोचा कि शास्त्री जी तब तक स्नान पान संध्या वंदन आदि कर चुके होंगे । पर सात बजे दंत धावन करने वाले शासत्री जी को देखकर मुझको आश्चर्य हुआ । उनसे खूब परिचित होने के बाद ही मैं उनके बारे में पूरी तरह से जान गया । शाम को बहुत देर तक योग चिकित्सा के लिए लोगों का आना जाना रहता था । उनसे निबटने के लिए काफी समय लगता था । उन लोगों के चले

जाने के बाद भी उन लोगों की बीमारियों के लिए कारणों को अपने अंतर्ज्ञान के द्वारा जानने के लिए वे प्रयत्न किया करते थे । उनके इस प्रयत्न के कारण उनको ठीक तरह नींद नहीं आया करती थी । अकसर सोकर जाग उठते भी थे । जागकर पौ फटने तक सोचते ही रह जाते थे । इसलिए दिन चढ़ जाने के बाद बिस्तर से उठने की आदत उनको पड गयी थी । परम निष्ठावान जैसे दिखाई देने के लिए उनके पास समय बिलकुल नहीं था । दूसरों की भलाई और उनके स्वास्थ्य के बारे में सोचना और उनकी बीमारियों को दूर करना ही उनका अनुष्ठान बन गया था । यही उनके लिए प्रातः कालीन आचरण योग्य अनुष्ठान का रूप धारण कर चुका था ।

दंतधावन के तुरंत बाद मेरे द्वारा लाये गये संतरों को चखा । चखकर उन्होंने कहा अच्छे हैं । पर पोला (Hollow) ज्यादा है और रस (Juice) बिलकुल कम है । हर चीज को देखते ही उसके गुणों के बारे में जानने की कोशिश करना उनका स्वभाव बन गया था ।

उसके बाद मुझे योग चिकित्सा देने के लिए उन्होंने अपना अनुमोदन दिया । मान जाने के पहले उन्होंने मेरे भोजन सुविधा के बारे में पूछा । मैंने कहा मैं होटल में ठहरूँगा । मेरे जवाब को सुनकर उन्होंने अपनी अतृप्ति को प्रकट किया । उनका मानना था कि होटल का भोजन इतना अच्छा नहीं रहेगा । इसलिए उनकी परेशानी बढी । उन्होंने कहा रोज खानेवाले साम्बार - दाल सबजी इमली को उबालकर बनाये जाने वाले सूप (Soup) को दक्षिण में साम्बार कहते है - चावल के साथ तुमको घी, सब्जियाँ, दूध, फल आदि भी खाना पडेगा । उन्होंने कहा - मैं जिस पथ्य की बात कर रहा हूँ उसको सुनकर यह मत सोचो कि तुम्हारी तबीयत सुधर जायेगी । अरे

ठीक या चंगा करने वाला तो ऊपर वाला है । तुम्हारे इस कमजोर शरीर के लिए पौष्टिक आहार की अधिक आवश्यकता है । नर्सिंगहोम की बात मैंने कही । फौरन उन्होंने कहा वहाँ तुमको भर्ति होना नहीं है । उनकी बातों को सुनकर मुझको लगा कि मुझको अवश्य स्वास्थ्य लाभ मिलेगा । मैं यह भी जान गया कि मुझको स्वास्थ्य लाभ पहुँचाना ही उन की बातों का एक मात्र उद्देश्य है ।

शास्त्री जी ने कहा मेरी आवाज धीमी है । यह बात मुझको नई लगी । जब मैं पूरी तरह से ठीक हो गया तब मुझे मालूम हो गया कि उन्होंने सही बात कही थी । आप सोच रहे होंगे कि मैं क्यों इस बात के बारे में जिक्र कर रहा हूँ । मैं तो बताना चाहता हूँ कि शास्त्री जी एक अद्भुत प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे । पहली मुलाकात में अपने यहाँ आनेवालों को वे ठीक तरह पढ लेते हैं और उनके बारे में जान जाते हैं । वे देखते ही समझ जाते हैं कि योग चिकित्सा के लिए आये हर व्यक्ति का स्वभाव क्या है । यह बात आदमी की सूरत देखकर, उनके कंठ ध्वनि को सुनकर, बोलने के तौर तरीके को देखकर, उनकी शारीरिक चेष्टाओं के अध्ययन के द्वारा, लायी गयी चीजों को देखकर उनके रोग आदि को वे आंका करते थे । व्यक्ति को सही रूप में आंकने में वे सिद्ध हस्त थे । अपने लेखा जोखा में वे कभी नहीं चूकते थे । न सिर्फ चिकित्सा करने के लिए बल्कि दूसरे आये दिन के व्यवहारों में भी अपनी इस कुशलता को काम में लाते थे । लिखावट को देखकर आदमी के स्वभाव के बारे में जान सकते थे । पता लिखने के ढंग का अध्ययन कर बिना डाक घर के मुहर को देखे वे कह सकते थे कि चिट्टी कहाँ से आयी है । इतना ही नहीं लिफाफे को खोले बिना ही वे कह सकते थे कि खत में क्या लिखा गया है । अपने इन विनोदपूर्ण

चमत्कारों से वे अपने आस पास वालों को आश्चर्य चकित कर सकते थे ।

पहले दिन की चिकित्सा के बाद मैंने अनुभव किया कि एक नई शक्ति मेरे नस नस में बहने लग गयी है । शरीर से खूब पसीना बहने लग गया था । होटल जाकर अच्छा स्वादिष्ट खाना खाने के लिए उन्होंने कहा । उन्होंने पूछा तुम अपने समय को शाम तक कैसे बिताओगे । नई जगह होने के कारण उनको सूझ नहीं पाया कि उनको क्या करना है और क्या नहीं करना है । उनका मन ऊब न जाय इस बात को लेकर शास्त्री जी परेशान होते थे । चिकित्सा पाने के लिए जितने भी लोग आते थे उन सब लोगों की शारीरिक एवं मानसिक सुविधाओं पर वे ध्यान दिया करते थे । उनके बारे में बडी ही आतुरता से जानने के लिए उत्सुक रहा करते थे । शास्त्री चिकित्सा काल में आये लोगों को चिन्ता और परेशानी से मुक्त रखना चाहते थे ।

शास्त्री जी के प्रश्न का जवाब देते हुए मैंने कहा कोई न कोई किताब पढते हुए मैं अपने समय को होटल में बिताऊँगा । उन्नव लक्ष्मी नारायण ने मेरे बारे में कहा : अजी ये एक अच्छे पाठक हैं । इसलिए ऊब जाने का सवाल ही नहीं उठता । शास्त्री जी ने कहा : किताबों को बंद कर दो । भोजन के बाद आराम से सो जाओ । शास्त्री ने अनेक ग्रंथों का शोध किया था । उनको अपने किताबों के ज्ञान पर लेश मात्र भी घमंड नहीं था । उसको वे ज्यादा महत्व नहीं दिया करते थे । उनके अनुसार हमारा शरीर और मस्तिष्क ही अच्छी किताबें हैं । उनका अध्ययन करना बेहतर काम होगा । कुछ समय के बाद मैं इस विषय के बारे में विपुल चर्चा करूँगा । शाम को मैं उनके यहाँ फिर से गया । मेरे भूख के बारे में, खाये गये व्यंजनों के बारे में, नींद के बारे में, आते समय लिये गये दूध और फ़लों के बारे में, मेरे शरीर की

स्थिति के बारे में उन्होंने मुझसे सवाल किया । मैंने उन सवालों का ठीक-ठीक जवाब दिया । उनके आदेशों का अक्षरशः करने की बात को सुनकर वे खुश हुए । उनको लगा कि अब मेरे स्वास्थ्य की गाडी पटरी पर आ गयी है ।

जो भी उनसे मिलने आता उन सब से वे ऐसे ही सवाल करते थे । उनके जवाबों को सुनते थे । बाद में ध्यानावस्था में जो बातें उनके सामने आयी है और घर पर उस व्यक्ति ने अपने समय को कैसे बिताया आदि के बारे में वे जान जाते थे । अगर किसी की बाधा या पीडा कम नहीं हो रही है तो उसके कारणों के बारे में पता लगाने की चेष्टा करते थे । अगर उन की सूचनाओं में किसी दोष या कमी को देखते तो उनको तुरंत दूरकर देते । तत्काल उनको सही मार्ग पर ला देते थे । जब चिकित्सा हेतु आये हुए लोगों को स्वास्थ्य लाभ मिल रहा है तो वे खुश हो जाते । अथक दूसरों की सहायता करने में ही श्री शास्त्री जी अपने समय को खर्च किया करते थे । मैं मद्रास में लगातार 43 दिनों के लिए रहा । चिकित्सा से संबंधित कई आश्चर्यजनक घटनाएँ घटी । उन सबका विवरण में यहाँ देना नहीं चाहता । पर मुझसे संबंधित एक दो बातों का विवरण मैं देना चाहता हूँ ।

शास्त्री जी के यहाँ पहुँचने के पहले खाना खप नहीं पाता था । ठीक तरह से नींद नहीं आती थी । ऊपर के वाक्यों में मैंने लिखा है शास्त्री जी ने निडर होकर खूब खाने के लिए और दिन में भी सोने के लिए कहा था । मैंने उनके आदेश का पालन अक्षरशः किया । ऐसा करने से किसी प्रकार की असुविधा का मैंने अनुभव नहीं किया । कुछ दिनों के बाद एक दिन सुबह शास्त्री जी ने पूछा आज सुबह तुमने क्या खाया । मैंने जवाब दिया - दो इडलियाँ (Idlis) । आश्चर्य को प्रकट करते हुए

शास्त्री ने कहा - ''क्या ? सिर्फ दो इडलियाँ सात बजे और भोजन ग्यारह बजे ?'' मैंने सोचा शायद मैं ज्यादा खा गया हूँ । उन्होंने कहा अरे भाई, दो क्यों ? तुम्हारे शरीर गठन की दृष्टि से तुम चार आसानी से खा सकते हो । दूसरे दिन भी उन्होंने पूछा आज सुबह कितने इडलियों को खाया । मैंने कहा, चार । ''और कुछ लिया'' मैने कहा, जैसे कि आदत है एक कप काफी पिया ।

''ये सरासर गलत हिसाब है । दो इडलियों के लिए एक कप काफी के हिसाब से चार इडलियों के लिए तुम्हें दो कप काफी को पीना है ।'' जैसे शास्त्री जी ने बताया था, दूसरे दिन मैंने ठीक वैसा ही किया ।

क्या सिर्फ इडलियों को खाया ? लगता है तुम को पाकशास्त्र के नियमों के बारे में कोई जानकारी नहीं हे । मैं बताता हूँ, सुनो । पहले दो इडलियों को खाना है । इसके बाद एक कप काफी का स्वाद लेना है । काफी पर एक तह उपमा (रवा से तैयार किया जाने वाला दक्षिण का मशहूर व्यंजन) का होना चाहिए । उसको ढकने के लिए एक दोसा को खाना पडता है । फिर एक बार और एक कप को दोसा पर उंडेल देना चाहिए'' अपनी इन बातों से उन्होंने मुझको खूब हसाया ।

शास्त्री जी की बातों से मैं प्रभावित हुआ । उस प्रभाव के कारण दूसरे दिन से आठ आठ इडलियों को खाने लगा । भोजन में करीब करीब 600 ग्राम (एक वीसा = 1200 ग्राम) सब्ज़ियों को, दो कप दही, दुपहर को सोकर उठने के बाद 6 केलों को, किश मिश (Dry Grapes), अंजूर सेब जैसे फल, शाम को चार बोण्डाओं (गोल गोल समोसा को दक्षिण में बोण्डा कहते हैं) के साथ कप काफी, रात के भोजन में आम खाने लगा था । खाने के मामले में मैं बकासुर कैसे बना मैं खुद नहीं जानता

था । बीस दिनों में मेरा वजन बीस पौन बढ गया होगा ।

एक दिन की बात है । अण्णामलै विश्वविद्यालय के गणित शास्त्र के आचार्य नरसिंग राव, शास्त्री जी के यहाँ आये । वे भी 'योग मित्र मण्डलि' (Friends of Yoga School) के सदस्य ही थे । वे शास्त्री जी के यहाँ ही ठहरे थे । बातों ही बातों में शास्त्री जी ने मेरे बारे में आचार्य नरसिंग राव को सब कुछ बताया । आश्चर्यचकित होकर आचार्य नरसिंग राव ने बातें सुनी । उस दौरान मेरे शरीर में कंपन पैदा हुआ । मैं लंबी लंबी साँसे लेने लगा । रीढ की हड्डी फुस फुसाने वाले सांप की तरह उठ खडी हो गयी । दोनों भुजाओं के पीछे की तरह वह दब गयी । इस कारण छाती फूल उठी । साँस को कैसे मापा जा सकता है मैं जानता नहीं था । अगर कोई माप सकता है तो वह कम से कम दो गज की होगी । इसको देखकर हम तीनों को आश्चर्य हुआ । ''बिना किसी व्यायाम के इस मात्रा में सांस कैसे बाहर निकल रही है । शास्त्री जी ने कहा यह मास्टर जी आर्थात् उनके गुरुजी मास्टर सी.वी.वी. की दया के कारण ही संभव है । मैं तो मात्र निमित्त (Instrumental) हूँ । किसी की बीमारी को दूर करने वाला भला मैं कौन होता हूँ । यह सबकुछ मेरे गुरु देव के कारण ही संभव हो रहा है ।

जब मैं वहाँ शास्त्री के यहाँ था तब कई लोग चिकित्सा के लिए आया करते थे । उनमें रिक्शे वाले, सफाई कर्मचारी, दफ्तर के मुंशी, अफसर लोग, अध्यापक, विश्वविद्यालय के आचार्य, डॉक्टर, इंजीनियर, लायर (Lawyer) पुराने खयालों के सनातनी, शिर्डी साईबाबा के भक्त, कम्यूनिस्ट लोग, विद्यार्थी, कांग्रेसी इस तरह - कई वर्गों के लोग थे । चाहे शिकायत बिच्छु के डंक की हो या आग लग जाने के कारण

शरीर जल गया हो या भूत ग्रस्त हो या टैफाइड हो या पित्ताशय की पथरी (Gall Stones) या गास्ट्रिक अल्सर (Gastric Ulcer) हो या किसी अंग का जलीय शोथ (Oedema) हो, पेट या उदर में भरा जल हो शास्त्री जी योगा के द्वारा उन शिकायतों को दूर किया करते थे । जो चिकित्सा के लिए आते थे उनमें एक बालक से संबंधित हृदय पिघला देनेवाली एक घटना के बारे में मैं यहाँ लिखना चाहता हूँ । उस लडके का बाप एक रिक्शावाला था । चार दिनों के पहले पैर के फिसल जाने के कारण वह गिर पडा था । तब से उस की बोलती बंद हो गई थी । उसकी आँखों की पुतलियाँ एक तरफ सरक गई थी । उसकी नज़र तिरछी बन गई थी । उसका मुँह मुड गया था । उसकी गर्दन एक तरफ झुक गयी थी । वह अपने हाथ पैर को पसार नहीं सकता था । अपने हाथों से उठाकर उसके पिता उसे वहाँ ले आया । बालक देखने में पीडा का सजीव रूप बन गया था । उसको देखकर घायल बछडे की ओर दौडने वाली गाय की तरह शास्त्री उस बालक के पास गये । बालक और शास्त्री इन दोनों की हालत हमसे देखी नहीं गयी । उसको देखते ही शास्त्री जी समझ गये कि लडके को खाने के लिए हो सकता हे गरीबी के कारण कुछ नहीं दिया गया है । फौरन एक कप काफी माँगाकर चमच से उस लडके को वे पिलाने लगे । इसके बाद उस लडके के स्वास्थ्य लाभ के लिए वे ध्यान करने लग गये । इतने में खुद सहारा लेकर वह लडका बैठ गया । लडके को बैठते देखकर आस पास के सब लोगों के चेहरे खिलने लग गये । अब शास्त्री जी उस लडके के पूरे शरीर को अपने हाथों से फेरा । वह अब ठीक तरह से बैठने में सफल हुआ । अब शास्त्री जी चाहते थे कि लडका अपने आप उठ खडा हो जाय और चलने लगे । इसलिए उसे उठने को कहा । लडके ने

उठने की कोशिश की । पर उससे उठा नहीं जा रहा था । शास्त्री जी ने फौज के ड्रिल सारजेन्ट (Sergeant) की तरह आज्ञा देते हुए खडे होने के लिए कहा । वाणि की गंभीरता के कारण लडका उठकर खडा हो गया । लडके को उठकर खडे होते देख शास्त्री बहुत खुश हुए । वह रूप देखने योग्य था । एक तरफ उनकी आँखों से खुशी झलक रही थी । दूसरी तरफ उनका दिल धडक रहा था । जब तक लडका खुद चल नहीं पायेगा तब तक शास्त्री जी के दिल को तसल्ली मिलने वाली नहीं थी । दरवाजे तक दो बार धीरे-धीरे वह चल पाया । अब शास्त्री जी ने उस लडके के पिता से कहा : तुम अब लडके को घर ले जा सकते हो । लडके का बाप पहले की तरह उसे अपने हाथों में उठाने के लिए तैयार हो गया । शास्त्री जी ने कहा उठाओ मत । उसे खुद चलने दो । लडका अपने पिता के साथ पैदल घर पहुँचते देख सब लोग दांतों तले उंगली दबाने लग गये ।

अगर मैं ऐसे ही उन चालीस दिनों की बातें लिखता जाऊँ तो एक बडा ग्रंथ बन जायेगा । चार सालों के बाद मैं शास्त्री जी से मिलने के लिए तिरुपति गया । तब वहाँ मैंने मद्रास से भी अधिक हलचल को देखा । तिरुपति की चिकित्सा पद्धति को देखकर मुझको लगा कि शीघ्र ही मानवता अमरत्व को प्राप्त करेगी । यहाँ भी वैसी ही घटनाएँ घटी जिस प्रकार की घटनाएँ मद्रास में घट चुकी थी । डॉक्टरों के द्वारा जवाब दे चुकने बाद कई लोग मरीजों को लेकर शास्त्री जी के पास आया करते थे । उनको अपनी योग चिकित्सा के द्वारा शास्त्री जी प्राण दान दिया करते थे । हर मरीज़ को एक सवाल के रूप में ग्रहणकर उनकी चिकित्सा शास्त्री जी किया करते थे । उनमें से कई लोग स्वास्थ्य लाभ पाकर आज भी सुखमय जीवन बिता रहे हैं ।

योग चिकित्सा के द्वारा सौ फीसदी सफलता अगर मिलती है तो वह यह साबित करता है कि योग के द्वारा इलाज से न दूर होने वाली लाइलाज बीमारियों को ठीक किया जा सकता है । काश वह दिन आ जाता तो कितना अच्छा होगा ।

बहुत लोगों का विश्वास है कि योग के द्वारा शारीरिक बीमारियों को दूर किया जा सकता है । यह कोई अनुचित विश्वास नहीं है । जब तक हमारे पास अकाट्य प्रमाण नहीं है तब तक इस पर विश्वास नहीं यिका जा सकता है । जब पहली बार दूरवाणि (Telephone) को काम में लाया गया था तब एक बडे राजनीतिक नेता जो वहाँ मौजूद था कहने लगा कि यह जादूगरी है । इस पर विश्वास नहीं यिका जा सकता है । उन्होंने कहा : यह तो वेन्ट्रिलोक्विजम् है । (Ventriloquism - ऐसी बोली बोलना जिस से मालूम हो कि दूर से दूसरे व्यक्ति द्वारा बोला गया शब्द आ रहा है ।) पाश्चातय देशों के भौतिक शास्त्र के शोध कर्ताओं ने किसी नयी चीज़ को ढूँढ निकाला तो परंपरावादी उनका जबरदस्त खण्डन किया करते थे । इतना ही नहीं उनको सख्त सजा भी दिया करते थे । गेलीलियो (Gallileo) से लेकर जगदीश चंद्र बोस तक के कई उदाहरण इतिहास के पन्नों को पलटने पर हमको मिलते हैं । बिना किसी प्रमाण के, कई चीजें जिनके बारे में हम अनभिज्ञ हैं, स्वीकार करने के उदाहरण भी हमारे पास हैं । इनके कारण हमें कई बखेडों का समना भी करना पडा था । आध्यात्मिक जगत और भौतिक जगत के बीच सीढियों का निर्माण करना, कई खतरों से भरा काम है । कारण मार्ग एक दम नया है और रास्ता दिखाने वाले भी नहीं होंगे । कोई नहीं जानता कि वह रास्ता उनको कहाँ ले जायेगा । कोई नहीं जानता कि हम अपने जीवन काल में उस लक्ष्य तक पहुँच पायेंगे या नहीं । इस मार्ग

के शोधकर्ता के पास नित्य प्रार्थना को छोडकर साथ देने वाला कोई नहीं मिलेगा ।

असतो मा सद्‌गमया

तमसो मा जयोतिर्गमया

मृत्योर्मामृतंगमया

- बृह उ.1,3,28

हम सुन रहे हैं कि ईसा मसीह ने भी अपनी आध्यात्मिक शक्ति से अनेकों के रोगों को दूर किया था । ईसाई लोग आज भी इनमें विश्वास रखते हैं । इसका जवलंत उदाहरण सेइन्ट बोर्नाडोटे का गीत (Song of St. Bernadotte) नामक उपन्यास में दी गयी वास्तविक घटना है । कहा जाता है कि फ्रांस के लौर्डस (Lourdes) नामक शहर में स्थित एक गिरजा घर को देश विदेश के कई व्याधिग्रस्त आ प्रार्थनाएँ कर निरोग हो जाते थे । गिरजा घर में प्रवेश करते समय डॉक्टर लोग व्याधिग्रस्त लोगों की बीमारी के बारे में जाँचकर एक अलग परचे में विवरणों को दर्ज किया करते थे । प्रार्थना कर लौटते समय फिर एक बार जाँचकर अपने नतीजों को फिर एक बार दर्ज किया करते थे । जीव (Biology) और वैद्य शास्त्र के वैज्ञानिक अलेक्सिस कारोल (Alexis Carrol) नोबल पुरस्कार से विभूषित किये गये थे । उन्होंने

अपने 'मान द अन्नोन' (Man the Unknown) किताब में इस प्रकार की चिकित्सा के बारे में यों लिखा है :

The most important cases at miraculous healing have been recorded by the Medical Bureau of Lourdels. Our present conception of the influence of prayer upon pathological lesions is based upon the observation of patients who have been cured almost instantaneously of

various affections, such as peritoneal tuberculosis, cold abscesses, Osteitis, Suppurating Wounds, Lupus, Cancer etc. The only condition indispensable to the occurence of the phenomena is prayer. But there is no need for the patient himself to pray or even to have any religious faith. It is sufficient that some one around him be in a state of prayer. Such facts are of profound significance. They show the vality of certain relations, of still unknown nature between psychological and organic processes. They prove the objective importance of the spiritual activities, which hygienists, physicians, educators and socialogists have almost always neglected to study. They open to man a new world.....

आजकल के वैज्ञानिक शोध के कारण प्रकृति संबंधि अनेक रहस्य प्रकाश में आये हैं । 13वीं, 14वीं सदियों में प्रचलित वैज्ञानिक शोधों पर और शोध के तरीकों पर ध्यान देनेवाले अपने सपनों में भी सोच नहीं पाये होंगे कि आज का विज्ञान शास्त्र इतनी प्रगति कर पायेगा । आजकल का वैज्ञानिक शोध कार्य जीव और जड पदार्थों को अलग कर अंतरिक्ष में प्रवेश करने वाला है । अगर अपनी प्रगति में एक और कदम आगे बढा सके तो वह क्रम बद्ध विश्व (Cosmos) को भी पार कर सकता है ।

वैज्ञानिक, समय आने पर शोध के आवश्यक मार्गों को और उसके लिए आवश्यक औजारों को भी बदलते जा रहे हैं । हमारे इस नई खोज के लिए आवश्यक मार्गों को ढूँढ निकालना उनके बस की बात नहीं है । कहने का तात्पर्य यह है कि हम जल्दबाजी में आकर किसी का तिरस्कार नहीं कर सकते हैं ।

*　　　*　　　*　　　*

बहु आयामी व्यक्तित्व वाले श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री का परिचय देना कोई

हंसी खेल नहीं है । उसके लिए सामान्य योग्यता से काम नहीं चलेगा । विशेष योग्यता के द्वारा ही उनका परिचय मुख्य रूप से नए लोगों को दिया जा सकता हे । अगर मैं लिखता जाऊँ तो ग्रंथ का कलेवर बढता जायेगा । इसलिए मात्र चंद घटनाओं का उल्लेख मैं यहाँ करना चाहता हूँ ।

सृजनात्मक साहित्य के बारे में शास्त्री के उनके अपने अनोखे विचार थे । उनका मानना था कि सृजनात्मक साहित्य में हम सिर्फ असत्य को ही देख सकते हैं । इसलिए ऐसे साहित्य को पढकर हमें अपने समय को नष्ट नहीं करना है । कवि अवश्य एक द्रष्टा हे । पर जीवन की गहराइयों में वह उतर नहीं सकता या उनको जान नहीं सकता है । जमीन को खोदने पर कम गहराई में पाये जाने वाले जल के समान वह शुद्ध नहीं होता । सच्ची कविता के लिए अलंकारों की अर्थात् बाह्य आडंबर की कोई आवश्यकता नहीं होती । जो ऋषि है उनके काव्य में सहज रूप से सब प्रकार के अलंकार आ समा जाते हैं । कारण उनके द्वारा काव्य के लिए चुना गया विषय होता है । गांधी जी की रचनायें इसके लिए ज्वलंत उदाहरण है । मानव कल्याण के लिए उपयोगी वैज्ञानिक ग्रंथ अवश्य पठनीय हैं ।

शास्त्री जी का विश्वास था कि आये दिन की यथार्थ घटनाओं को कविता की वस्तु के रूप में चुनकर सरल शब्दों के द्वारा करुणा रस प्रधान नीति का बोध कराने वाली सुन्दर कविता को लिख सकते हैं । इस दृष्टि से ही उन्होंने **‘कडुपु तीपि’ (माँ की ममता या माँ का प्यार) ‘विश्वासमु’ (विश्वास) ‘कपोत कथा’ (कबूतर की कहानी) ‘मूडुनाल्ल मुच्चटा’ (तीन दिनों की बात)** आदि आदि छोटे खण्ड काव्यों की रचना की ।

प्राचीन काल के साहित्य में भवभूति द्वारा रचित उत्तर रामचरित को ये बहुत पसंद करते थे । उसको पढकर वे पुलकित हो उठते थे । उसकी टीका जब भी करते थे तब वे पूर्ण रूप से भाव विभोर हो उठते थे । कालिदास कृत शाकुंतल को वे इतना पसंद नहीं करते थे । भौरे का बहाना दे प्रवेश करने वाले दंभी दुष्यंत की वे निंदा करते थे । उनके अनुसार दुष्यंत और आज के दंगा खोर रोमियों में कोई अंतर नहीं है । साहित्य संबंधी उनके सब विचारों का उल्लेख यहाँ हो नहीं सकता है । वह काम मेरे बस की नहीं है । साहित्य के क्षेत्र में उनकी जिज्ञास किस प्राकर प्रतिबिंबित हुई थी, बस उसकी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए इसका जिक्र मैंने यहाँ किया है । साहित्यालोचन और इतिहास के शोध में स्थित ईर्ष्या द्वेष और पूर्व धारणाओं से ऊब जाने के कारण उन क्षेत्रों को छोडकर अपने पूरे जीवन को मानव सेवा के लिए उन्होंने अर्पित कर दिया था । एक पद्य के द्वारा अपने मनोभावों को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है :

''प्रारंभ में कविता लिखने की उत्सुकता मुझमें थी । कुछ कवितायें मैंने भी लिखी थी । पर शीघ्र ही मैं ऊब गया । इस मनबहलाव के प्रति दिलचस्पी धीरे-धीरे

कम होती चली गयी । जरा मरण रूपी कीडे को मन से दूर कर दिया । अपने जीवन रूपी वृक्ष को फूल और फल दार बनाने के लिए माली बन जाने का निश्चय मैंने कर लिया ।

हे भगवान आज से मैं अपने मन वचन और कर्म से आपका सेवक बनकर आपकी सेवा करूँगा । बाकि सब कामों को भुलाकर दूसरों को सुख देने वाले कामों में लग जाऊँगा । मैं पैसे कमाने की माया में पडा नहीं रहूँगा । हे भगवान अपने इस

सेवा पथ से मुझे विचलित मत होने देना ।''

क्योंकि शास्त्री जी ने सबको त्याग देने का निर्णय लिया है और सिर्फ चिकित्सा पर ही ध्यान देने के लिए ठान लिया है, हमें यह नहीं समझना चाहिए कि शास्त्री के आस पास रहने का मतलब शुष्क सार हीन दार्शनिक जीवन को बिताना मात्र है ।

शास्त्री जी एक सच्चे सत्यान्वेषक थे । कला के प्रति अनुराग रखनेवाले थे । उनके हर एक काम में उक्त दोनों बातें प्रतिबिम्बित होती हैं । रंगीन पेनसिलों को इकट्टा करने का उनको शौक था । इनके अलावा कलम, छडी (Walking Stick) और अजीब से अजीब चीजों के भी वे शौकीन था । रंगीन पेन्सिलों को इकट्टा तो करते थे पर उनका उपयोग दूसरे लोग किया करते थे । वे यह भी देखा करते थे कि किस कलम से लिखने पर लिखावट सुन्दर दिखायी दे सकती है । आस पास के लोगों में अपनी कलमों को देने के लिए होड सा हो जाता था । कानी उंगली के आकार के नारियल के फलों को कहीं से वे माँगते थे । उनको खूब पालिश (Polish) करवाकर और उनपर एक ढक्कन लगाते थे । बाद में उनको चाँदी का किनारा (Rim) लगाकर अपने दोस्तों को खुद दिया करते थे । इस प्रकार की एक डिबिया उन्होंने मुझको भेंट किया था । मैंने कहा : मैं तो सुंघनी (Snuff) का इस्तेमाल नहीं करता । इसे लेकर मैं क्या करूँ । उन्होंने कहा : अरे भाई इस डिबिया जैसी चीज़ को कपास से भर दो और उस पर अतर या युडिकिलों (Eall-de-xologne) उडेल दो । जब जी चाहे तब उसे सूंघ सकते हो । इसी तरह अनेक प्रकारों के छडियों को पालिश कर दोस्तों को दिया करते थे । ये छडियाँ कभी ताड के मज्जा (Pith) से

बने हुए होते थे । कुछ बल खानेवाले साँप जैसे हुआ करते थे । अपने प्रार्थना गृह के लिए वे मृग और व्याघ्र के चमडों को मंगाते थे । उनके पास आंध्र के चारों कोनों से सभी वर्ण ओर सभी वर्गों के लिए चिकित्सा पाने के लिए लोग आया करते थे । इन सबको अपनी हूंसी खुशी की बातों से खुश करते थे । नये शब्दों को लेकर भाषा विज्ञान संबंधी उस शब्द की उत्पत्ति के बारे में बता देते थे । 'दोसे' शब्द की उत्पत्ति के बारे में वे कहते थे कि 'दो' (हिन्दी संख्यावाचक) + सेय (मतलब तेलुगु में हाथ) अर्थात दो हाथ । ठीक इसी प्रकार अरसे 'एक व्यंजन के 'अर' का अर्थ आधी हथेली लगाते थे । वे आये हुए लोगों को बताते थे कि कब फूलों को तोडना है और उसका उपयोग कैसा करना है । अनेक सब्जियों के स्वाद और गंधो के बारे में भी विशद रूप से बताते थे । अपने खण्ड काव्य 'कडुपुतीपि' (माँ की ममता) में आंध्रवालों की प्रीतिकर हरी सब्जी 'गोंगूर चटनी' के बारे में (यह हरी सब्जी Green को गुंटूरु और कृष्णा जिला के लोग अधिक चाव से खाते हैं) एक कविता में उन्होंने कहा है :

जब चाहे तब खाने के लिए और स्टोर करने (To Store) के लिए आवश्यक चीज़ों को मिलाकर सुकोमल (Tender) गोगु (Gongu leafs) पत्तों को हरिमिर्च के साथ रगड कर रखी गई चटनी को देखते ही मुँह में पानी भर आ जाता है । वे कहा करते थे कि जो योग चिकित्सा के लिए आते हैं उनको स्वादिष्ट खाना खाना चाहिए । पर जब शास्त्री जी मद्रास में रहते थे तब उनका वेतन मासिक पचास रुपये था । पर उनका परिवार काफी बडा था । तिस पर घर पर आने जाने वालों का तांता सा लगा रहता था । वेतन के ज्यादतर पैसे घर के किराए में ही खर्च हो जाते थे । किराना (Grocery) - लकड़ी नूनतल - सामानों के लिए भी काफी पैसे खर्च हो जाते

थे । शास्त्री चिकित्सा के लिए जो लोग आते थे उनसे एक पैसा भी नहीं लेते थे । अगर कोई अपने साथ फलों को लाता तो वे समझते थे कि वे इलाज के लिए पैसे ले रहे हैं । सुबह और शाम को चिकित्सा के लिए आये हुए लोगों से निपट लेने में समय लगता था । तब तक वे अत्यंत भूख का अनुभव करते थे । उनके पेट में चूहे तेजी से दौडने लग जाते थे । योग साधना से ज्यादा उनको परिवार की साधना के लिए ज्यादा कष्ट उठाना पडता था । गरीबी उन को भगवद् ध्यान की तरफ खींच ले गयी । कठिनाइयों के बीच उनका मन कभी विचलित नहीं हुआ । कभी उन्होंने धीरज नहीं खोया । वे हमेशा ऊँची आवाज में गाते थे : हे माझीरे ये मेरी जीवन नैया अब तुम्हारे हाथ में है । मर्जी तुम्हारी । पार लगाना या मंझ धार में इसे डुबो देना अब तुम्हारे ही हाथ में है । ''कभी कभी गाते : अरे वो ऊपरवाले झुलसाने वाले धूप में मुझे लग रहा है आज कल्पतरू की शीतल छाया मिल गई है । जब हम उनके इन गानों को सुनते हैं तो हमको लगता है कि हम इस दुनिया में नहीं किसी और एक दुनिया में हैं । एक वक्त के खाने के लिए घर में चावल नहीं है तो वे विचलित नहीं होते थे । वे सबकुछ भगवान पर छोड देते थे । ऐसी कई घटनाओं को मैं जानता हूँ । एक दिन की बात है । घर में चावल नहीं थे । करीब-करीब दस बजे नेल्लूर से कोई आकर उनसे मिला । वह अपने साथ डेढ सेर चावल लाया था । वास्तव में उसको उस दिन आना नहीं था और एक दिन उसको आना था । वह जानता भी नहीं था कि शास्त्री जी के घर में चावल नहीं है । फिर भी वह आ गया और डेढ सेर चावल दे गया । और एक दिन की बात है । भोजन के पहले का समय था । शास्त्री जी ने कहा अनानस खाने को जी चाह रहा है । अगर मिल जाय तो मजा आ

जायेगा । इतने में घर के दरवाजे को खोलकर शास्त्री जी का राजमंड्री निवासी एक मित्र अंदर आ गया । उनके हाथ में अनानस फलों की एक टोकरी थी । अपनी दरिद्रता में भी शास्त्री जी एक अनोखी तृप्ति का अनुभव किया करते थे ।

रात्रि भोजन के बाद, एक दिन, शास्त्री जी ने आराम से सोते हुए कहा : अरे भाई जो तृप्ति की भावना मुझमें है वह इंगलैंड के जार्ज सम्राट को भी नहीं मिल रही होगी । आज के दिन कई लोग असहनीय पीडा का अनुभव करते आये थे । चिकित्सा के बाद हँसते-हँसते वे यहाँ से चले गये । मेरे द्वारा भगवान ऐसे पुण्य कर्म करवा रहे हैं । इस कारण मुझे तृप्ति मिल रही है और मैं सुख से सो पा रहा हूँ । दूसरी बात यह है जिस दिन जिस चीज़ की जरूरत पडती है उसका खुद भगवान संभरण कर रहे हैं । जब भी किसी कष्ट या कमी को भगवान दूर करते हैं तब मैं अपार आनंद का अनुभव करता हूँ । ये वह तृप्ति या आनंद है जो असाध्य है । कल के लिए संचय करने का सवाल नहीं उठता था और न संचित सामग्री की सुरक्षा के लिए परेशान होने का । ऐसी बातों को सुनने पर हमें मालूम हो जाता है कि संत महात्मा लोग सब कठिनाइयों को अपने लिए अनुकूल बनाकर निश्चिंत होकर जीवन बिता सकते हैं । वे असुविधा को सुविधा में बदल सकते हैं ।

* * * *

योग चिकित्सा के लिए शास्त्री जी किस मार्ग को अपनाते थे, यह जानने के लिए पाठक अवश्य उत्सुक होंगे । प्रातः और सायम संध्या के समय शास्त्री जी एक जगह पर बैठ जाते थे । बैठने के बाद अपने गुरुदेव मास्टर सी.वी.वी. का नाम लेकर उनको नमस्कार किया करते थे । तदुपरांत आँखें मूँदकर अपने अंदर झांक लेते थे ।

हम नहीं जान सकते उनके अंदर क्या गुजरता होगा । चिकित्सा के लिए आये हुए लोग भी उस समय उनके पास आकर बैठ जाते थे । करुणा सागर भगवान से स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रार्थना करने के लिए कह उनको अपनी अपनी आँखों को मूँद लेने के लिए आदेश देते थे । उनके अंदर जो घट रहा है उसके लिए मात्र साक्षी बनकर देखने के लिए कहते थे । कुछ लोग अजीब से अजीब सुन्दर दृश्यों को देखते तो कुछ लोग शरीर के जिस अंग या भाग में वयाधि है उसमें चलन का - मानो जो अपने स्थान से हट गया है वह अपने स्थानन पर आ बैठ गया हो - कुछ ऐसा अनुभव करते थे । कुछ लोग निश्चिंत होकर सो जाते हैं । ध्यान के बाद वे नूतनोत्साह का अनुभव किया करते थे । इतना ही नहीं उनको लगता था कि शरीर की पीडा अब दूर हो गयी है । कुछ दिनों के लिए इस प्रकार का वे अनुभव करते आयेंगे । धीरे धीरे वे रोग मुक्त हो जाते थे । ध्यानावस्था में जो घटती है उनको तत्काल उन्हें एक किताब में दर्जकर देते थे ।

कभी कभी यह देखा जाता है कि कुछ लोगों की बीमारी शारीरिक न होकर मानसिक होती है । अगर वह मानसिक है तो उसके कारणों को ढूँढ निकालकर उनको ठीक किया करते थे । जब उन कारणों को ठीक किया जाता है तब वे अपने आप स्वस्थ हो जाते थे । बीमारी शारीरिक हो या मानसिक जब तक चिकित्सक उसके बारे में जान नहीं जाते या ज्ञान प्राप्त नहीं करते तब तक उनकी उस बीमारी को ठीक नहीं किया जा सकता । ऐसे कई अद्‌भुत अनुभवों को चिकित्सा के लिए आए हुए लोगों ने रजिस्टर में दर्ज किया है ।

उनके पास बैठने वालों के ही नहीं कही सुदूर प्रांतों में रहने वाले व्याधिग्रस्तों

की व्याधि भी शास्त्री जी दूर कर देते थे । यह आश्चर्यजनक बात होते हुए भी वास्तविक बात है । नाजूक परिस्थितियों में जब रोगी के बचने की कोई उम्मीद नहीं है, लोग शास्त्री जी के नाम पर तार भेजते थे । तार के पहुँचने के पहले ही इधर रोगी का हाल सुधर जाता था ।

व्यक्तियों की और उनकी बीमारियों की चिकित्सा के साथ-साथ पूरे देश की समस्याओं को दूर करने के लिए उन समस्याओं का हल ढूँढने के लिए शास्त्री घोर तपस्या किया करते थे । सन् 1946 में रायलसीमा प्रांत (आजकल के अनंतपुर कडपा कर्नूल और बल्लारी जिलाओं का प्रांत) घोर अकाल का शिकार बन गया था । ठीक इसी तरह सन् 1947 में भारत देश की स्वतंत्रता के लिए भी उन्होंने तपस्या की थी । उन्होंने इन दोनों संदर्भों में जिन जिन अनुभवों को प्राप्त किया था उनको भुलाया नहीं जा सकता । सन् 1947 के आस पास गांधी जी ने अनशन किया था । उनकी भलाई के लिए और उनके स्वास्थ्य के लिए शास्त्री जी ने तप किया था । इस

बात को प्रकट किये बिना मुझसे रहा नहीं जाता है । अपनी शिष्टता और शालीनता के कारण ऐसी बातों के बारे में वे कभी भी चर्चा नहीं किया करते थे । गांधी जी और शास्त्री जी के देह भले ही दो थे । पर उन दोनों के मानो प्राण एक थे । गांधी जी को अपने प्राणों से भी ज्यादा चाहते थे । गांधीजी के अहिंसा तत्व, हरजनों का सुधार और उनके मंदिरों में प्रवेश करने देने के आंदोलन आदि आदि का समर्थन शास्त्री ने किया था ।

इन सबके बारे में मुझे लिखना चाहिए । पर ग्रंथ के कलेवर को सीमित करने के लिए मैं उन्हें छोड रहा हूँ । ऐसे इन सबके बारे सबको हर एक बात मालूम है ।

शास्त्री जी जैसे ही अनेक लोगों ने मास्टर सी.वी.वी. से भृक्त रहित तारक राजयोग की दीक्षा ली थी । इतनी तत्परता, इतनी सफलता के साथ शायद ही किसी ने लोगों को रोग मुक्त किया हो । मैं ऐसे लोगों को जानता नहीं हूँ । इनमें कुछ लोगों के मन में इस योगाभ्यास चिकित्सा के बारे में अलग विचार थे । कुछ लोगों का मानना था कि जो चिकित्सक है उनको खतरा मोल लेना पडता है । दूसरी धारणा उन लोगों की यह थी कि इस योगाभ्यास को निर्माण, चिकित्सा हेतु नहीं हुआ है । इस संबंध में शास्त्री जी से हमें कई बातें मालूम हुई । वे कुछ इस प्रकार हैं :

पहला : दूसरों की पीडा को देख दुःख का अनुभव करना इस चिकित्सा पद्धति का मूल सिद्धांत है । चिकित्सक को अनुभव करना चाहिए कि वह खुद उस पीडा से पीडित है । इस प्रकार जब चिकित्सक दूसरों की पीडा को अपनी पीडा समझते है तब वह व्याधिग्रस्तों के दुःख को दूर कर सकता है । अगर चिकित्सक बीमार व्यक्ति से यह कहे कि देखो मैं अब एक मंत्र का उच्चारण करूँगा । तुम्हारी पीडा छूमंतर हो जायेगी तो उसका कोई असर नहीं होगा । चिकित्सा पाने वाले को भी चिकित्सक से यह कहना नहीं चाहिए : अच्छा तुम मंत्र का उच्चारण करो । मैं भी उसके प्रभाव को देखना चाहता हूँ । इस प्रकार के सोच से काम नहीं चलेगा । आरंभ में शास्त्री जी दूसरों की पीडा को देखकर दुःखी हो जाते थे । उनके दुःखी होने के कारण से ही उनकी चिकित्सा का असर रोगी पर पडता था और रोगी का रोग दूर हो जाता था । शास्त्री जी ने कभी इस बात पर ध्यान नहीं दिया । पर जब उन्होंने देखा कि कुछ संदर्भों में रोगी के दुःख से खुद दुःख का अनुभव करने के कारण रोगी का रोग शीघ्र दूर हो रहा है तो शास्त्री जी इस निर्णय पर पहुँच गये कि

रोगी के प्रतिवाले चिकित्सक की आर्तता के कारण रोगी को स्वास्थ्य लाभ मिल सकता है । इतना ही नहीं चिकित्सक को अपने पराये या जातिपांति की भावना से ऊपर उठना है । चिकित्सक को समझना चाहिए कि रोगी, रोगी होता है और उनका न कुल होता है और न ही कोई जाति । ऊँच नीच या जाति भेद को भूलकर सबकी चिकित्सा एक जैसी करनी चाहिए । इस प्रकार के सोच के परिणाम अवश्य अच्छे निकलते हैं । इस योग चिकित्सा पद्धति को अपनाने वाले कई लोग थे । पर चिकित्सा हेतु आने वाले लोगों के प्रति आर्तता की भावना सिर्फ शास्त्री ही में थी । यह शास्त्री जी की विशेषता थी । इस विशेषता के पीछे हम शास्त्री जी के दयागुण को ही देख सकते हैं । रोगियों के रोग का परोक्ष रूप से कुछ हद तक, प्रभाव चिकित्सक पर पड़ता है । सन् 1926 में शास्त्री जी ने इस चिकित्सा पद्धति को एक दम खुले रूप से अपनाया । उस समय कुछ लोगों ने शास्त्री जी को समझाया कि इसे इस तरह खोलकर मत अपनाओ । भविष्य में रोगों का प्रभाव तुम पर पड सकता है । इसलिए इसे छोड दो । उस दिन ध्यान करते समय उन्होंने अपने गुरुजी मास्टर सी.वी.वी. से निवेदन किया । उन्होंने गुरु से कहा : रोगियों की चिकित्सा करने के कारण, उनको पूर्ण रूप से स्वास्थ्य लाभ मिलने के बाद, अगर मैं खुद रोग पीडित हो जाऊँ तो मुझे किसी प्रकार का दुःख नहीं होगा । मैं खूब जानता हूँ कि उन लोगों की पीडा या रोग को मैं नहीं आप दूर कर रहे हैं । कारण मुझको चलाने वाले तो आप ही हैं । मैं कैसे मान सकता हूँ करुणा और दया के सागर आप दूसरों के दुःख को दूर कर मुझे दुःखी बना सकते हैं । मैं तो आपके पीछे खडे होकर अपना बचाव करना खूब जानता हूँ । इस संदर्भ में शास्त्री जी के द्वारा लिखी गई

एक कविता का सारांश हिन्दी में दिया जा रहा है : ''हे मेरे स्वामी ! मेरे अंदर बसने वाले । मेरे अज्ञान अंधकार को दूर करने वाले । मेरे अहम् और घमंड को दूर कर मुझे अपने में लीन होने दीजिए ।

मैं जानता नहीं था कि आप मेरे दिल में बसे हुए है । मैंने अनेकानेक कठिनाइयों को झेला है । अब ज्ञानोदय के कारण सारे दुःख दूर हो गये हैं । अब यह मेरा शरीर एक मन्दिर बन गया है । आप इस मन्दिर में प्रतिष्ठित हो जाइए और अपने विराट रूप को अपनाकर राज कीजिए । मेरा यह शरीर एक आइना है । आइने को साफ कर अपने उद्दीप्त तेज के उजाले को पूरे विश्व में फैला दीजिए ।

हर पल मुझमें तन्मयता पूर्ण आह्लाद की भावना बढती जाय । यह तन्मयता पूर्ण आह्लाद की भावना एक क्षण के लिए भी मुझमें मंद न पड़े । मेरी अहम् की भावना मिट जाय । मुझे ममत्व की भावना से मुक्त कीजिए । मुझे हे स्वामी आप अपनाइए ।

हे स्वामी मैं खूब जान गया हूँ कि आप मेरे पीछे खडे होकर मुझसे आँख मिचौली खेल रहे हैं । अब से मैं बहत जागरूक रहूँगा । मैं आपके पीछे छिप जाऊँगा । अब मैं अपने कदमों को आगे बढाऊँगा । कभी पीछे नहीं हटूँगा । मैं डरूँगा नहीं । मेरी नैया पार हो जायेगी । मेरी भलाई होगी ।''

उस दिन से लेकर अपनी आखरी साँस लेने तक शास्त्री जी ने अनेक लाइलाज भयंकर व्याधियों से, एक मन से, अनेकों को रोग मुक्त किया है । अगर चिकित्सा के कारण वे किसी शारीरिक हानि के शिकार बन गये होते तो उनके प्राण पखेरू कभी उड गए होते । अनेक बीमारियों को - क्षय दमा (Asthma) मस्तिष्क की

नाडियों की सूजन (Meningitis) हृदय रोग, सांप का डसना आदि आदि इन्होंने ठीक किया था । इस योग चिकित्सा में उनको पच्चीस वर्षों से ज्यादा वर्षों का अनुभव था । 'वे ही इसके लिए प्रमाण हैं ।'

वे खास रूप से कहा करते थे कि दूसरों की बीमारी दूर करने से हमारी बीमारी भी हमसे दूर हो जायेगी । हमसे ज्यादातर लोग शास्त्री जी के इस वाक्य की सच्चाई को अपने स्वानुभव से जानते हैं ।

दया गुण का ओढाव हम जबरदस्ती से पहन नहीं सकते । दया गुण आकाश से पृथ्वी पर बरस पडने वाली ठंडी वर्षा जैसी है । दया दिखाने वाले और दया के पात्र - इन दोनों की द्विगुणीकृत भलाई दया करती है । अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार, बहु मुख प्रज्ञाशाली शेक्सपीयर अपने बहु चर्चित नाटक 'मर्चेन्ट ऑफ वेनीस (वेनीस का सौदागर) में पोर्षिया पात्र से कहलवाते हैं :

''The quality of mercy is not strain'd.
It droppeth as the gentle rain from heaven.
upon the place beneath, it is twice blest
It blesseth him that gives and him that takes''

ईसा मसीह ने भी कहा है :

Blessed are the merciful, for they shall
obtain Mercy - Mathew V

दूसरा : कुछ लोगों का मानना है कि इस योग का निर्माण चिकित्सा के लिए नहीं हुआ है । ऐसे लोगों को जवाब देते हुए वे कहते हैं : अगर चिकित्सा इस योग का उद्देश्य या लक्ष्य नहीं है तो भला कौन इस विद्या को सीखने के लिए आगे

बढेगा । कोई शरीर में उत्पन्न चंद कंपनों का अनुभव करने के लिए इस योग को सीखता नहीं है । बात जो भी हो, हमको लगता है कि शास्त्री जी की योग साधना ने उनके स्वभाव के कारण एक विशिष्ट मार्ग को अपनाया है । उनका विश्वास था कि भगवद् ध्यान का मार्ग भी सत्य, दया और उपकार का एक फलदायी मार्ग होना चाहिए । उनके द्वारा अपनाया गया आकर्षण का मार्ग हमें जीमूत वाहन और जातक कथाओं की याद दिलाता है ।

इनके पास चिकित्सा के लिए कई लोग आया करते थे । स्वास्थ्य लाभ को पाने के बाद जिस दिव्य शक्ति के कारण वे रोग मुक्त हो गये हैं उस दिव्य की खोज किया करते थे । इतना ही नहीं अपनी पीडा के बहाने उस सर्वान्तरयामी को पहचानने का प्रयत्न करते है जिन्होंने उनको निरोग बनाया है ।

इसके पहले मैंने आप लोगों को अवगत कराया है कि जबतक चिकित्सक उन लोगों के साथ जिनकी चिकित्सा वह कर रहा अपने आपको मिला नहीं लेता तब तक चिकित्सक से चिकित्सा को पाने वाले को कोई लाभ नहीं मिलता । इससे चिकित्सा एक प्रकार से अनेकों के पीछे छिपी वास्तविकता को पहचानने का साधन बनती है । चिकित्सा, इस प्रकार, वास्तव में योग साधना के लिए सहायक बन सकती है । इस योग के कारण ही हम अपने में अपने आपको देख सकते हैं । एक व्यक्ति को दुःखी देखकर, जो अपने आपको एक योगी समझता है, उससे परे या अलग नहीं रह सकता । उससे वह अपना मुँह नहीं मोड सकता ।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समम् पश्यति योरर्जुन

सुखं वा यदि वा दुःखम् स योगी परमो मतः - भगवद्गीता VI.32

''हे अर्जुन वही परम योगी है जो सुख में दुःख में सबको अपना मानता है ।''

उक्त भगवद्‌गीता के उक्त वाक्य को आइए एक बार स्मरण कर लेंगे :

भृक्तरहिततारक राजयोग :

श्री शास्त्री जी कहा करते थे कि चिकित्सा के द्वारा रोगियों को रोगमुक्त करने वाले वे नहीं है । करने वाला तो सर्वान्तरयामी, सर्व दयामय भगवान ही है । इस बात की चर्चा मैंने इससे पहले की है । उनके लिए उनके गुरुदेव मास्टर सी.वी.वी. ही साक्षत् परब्रह्म है । पर शास्त्री जी कभी भी अपने गुरूदेव का नाम नहीं लेते थे । कारण गुरुदेव ने सब साधकों को आदेश दिया था कि मेरे इस योग का प्रचार मत करो । शास्त्री जी ने अपने जीवन भर इस आदेश का पालन किया । गुरु जी जैसे ही

वे भी नहीं चाहते थे कि लोग उनके नाम का ढिंढोरा पीटे । इस एक कारण से ही इस संसार में उनको जो नाम मिलना था, मिल नहीं पाया । उनके निधन के बाद उनसे उपकार प्राप्त व्यक्तियों में से चंद लोग, उनके हृदय को जानने वाले दुःख संतप्त कुछ मित्रों ने उनके बारे में पत्र-पत्रिकाओं में कई बातें लिखी थी । उन लेखों को पढने के बाद बहुत लोगों को मालूम हुआ कि वे एक पहुँचे हुए योग साधक भी थे । उनका जन्म धन्य है जिसको उसके मरणोपरांत यादकर अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करते हैं । श्री शास्त्री जी ने 'भृक्त रहित तारक राज योग' का अभ्यास किया था । इस योग की स्थापना कुंभकोणम के एक महानुभाव ने सन् 1910 में की थी । इस योग साधना का मूल मंत्र उस महानुभाव के नाम के पहले के तीन अक्षर है । वे हैं सी.वी.वी. [कंचुकोट (C) वेन्कट राव (V) वेन्कास्वामी राव (V)] उन्होंने (सी.वी.वी. ने)

अपने शिष्यों से वादा किया था कि जो हाथ जोडकर नमस्कार करते हैं उनको मैं ब्रह्म ज्ञान प्रदान करूँगा । उनका (सी.वी.वी. का) मानना था कि समाधिग्रस्त अवस्था में या देह परित्याग के बाद ही प्राप्त होने वाली चीज़ यह ब्रह्म ज्ञान नहीं है । इस ब्रह्म ज्ञान को इस संसार में इस शरीर के साथ ही प्राप्त कर सकते हैं । जिन बातों की चर्चा इन्होंने की है, शायद ये हमारे प्रचीन ग्रंथों में लिपि बद्ध होंगी । पर इन्होंने अपने इस योग की स्थापना किसी एक ग्रंथ के आधार पर नहीं की थी । यह एक दम एक नई सृष्टि है । वे एक दम निरंकुश हैं । वे एक महिमा संपन्न मनीषि हैं । इस योग को मानने वाले इनको साक्षात् परब्रह्म स्वरूप ही मानते हैं ।

भृक्त रहित तारक राजयोग को मानने वाले पूजा भजन आरती जैसे बाह्य चिह्नों को नहीं मानते । इनका स्मरण कर अगर कोई इनको नमस्कार करता है तो उनके शरीर में योग क्रिया शुरू हो जाती है । साधक का एक मात्र काम है कि वह साक्षी बनकर अपने शरीर में घटने वाली क्रियाओं और होने वाले परिवर्तनों को देखे । इस योग के लिए कोई विशेष मुद्राएं नहीं है । आसनों को अपनाने की या प्राणायाम या हठयोग आदि का अभ्यास करने की कोई जरूरत नहीं है । इन सब पर इस योग क्रिया में पाबंदी है । साधक अपने पूरे होशो हवास में रहता है ।

इस योग में कडे खान पान के नियम नहीं है । शरीर को ठंडक पहुँचाने वाले व्यंजनों को, पुष्टि देनेवाले पदार्थों को खाना पडता है । साधना के लिए घरबार को छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है । सन्यास लेना यहाँ मना है । अपने पेशे या व्यवसाय को आगे बढ़ाते हुए इस योगाभ्यास में भर्ती होने वाले साधना कर सकते हैं । दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करने की चेष्टा साधकों को नहीं करना चाहिए ।

इस योग के अभ्यास करने वालों को कुछ चमत्कारी शक्तियाँ हासिल होती हैं । इन प्राप्त शक्तियों का दुरुपयोग उनको करना नहीं चाहिए । इतना ही ये शक्तियाँ उनके लिए इतने मुख्य नहीं होती हैं । योग की गरिमा को ध्यान में रखते हुए साधकों को अपने अपने जीवन को ढालना चाहिए ।

इस योग के बारे में लिखने के लिए बहुत कुछ बाकी है । पर फिलहाल इतना ही काफी है ।

गुन्टूरु

खर वर्ष **- कोत्त वेन्कटेश्वर राव**

श्रावणशुक्ल द्वितीय

1951